पदार्थ प्रदीप

।। श्री अनन्त लब्धिनिधानाय गौतम स्वामिने नमः ।।
।। श्री बुद्धितिलक शान्ति रत्न शेखर सद् गुरूभ्यो नमः ।।

पदार्थ प्रदीप

।। दिव्य आशीष दाता ।।

स्व. आचार्य देवश्री रत्न शेखर सूरीजी म. सा.

।। प्रेरणा दाता ।।

परम पूज्य आचार्यदेव श्री रत्नाकर सूरीश्वरजी म.सा.

।। सम्पादक ।।

मुनि रत्नज्योत विजयजी

।। प्रकाशन एवं प्राप्ति स्थान ।।

श्री रंजन विजयजी जैन पुस्तकालय
मु.पोस्ट - मालवाडा
जि. जालोर (राजस्थान) 343039

शा. हंजारीमल वन्नाजी
पिपली चोक, मु.पो. सांचोर
जि. जालोर (राज.) 343041

पदार्थ प्रदीप

श्रुत भक्ति के सहयोगी

स्व. हंजारीमल वन्नाजी बुरड

श्रीमती पारुबहन हंजारीमल बुरड

मेघराज हंजारीमल	प्रकाशमल हंजारीमल
मोतीलाल हंजारीमल	भंवरलाल हंजारीमल
पारस मेघराज	मुकेश प्रकाशमल
रमेश मेघराज	कमलेश प्रकाशमल

जिगर भंवरलाल

समस्त बुरड परिवार

शा. हंजारीमल वन्नाजी
पिपली चौक, सांचोर

- क्वालीटी ट्युब्स, बम्बई
- रत्नदीप स्टील अे. इन्जीरीयंग्रीक, बम्बई
- मेटल ट्युब्स इन्डस्ट्रीज, बम्बई
- पद्मिनी स्टील्स, बम्बई

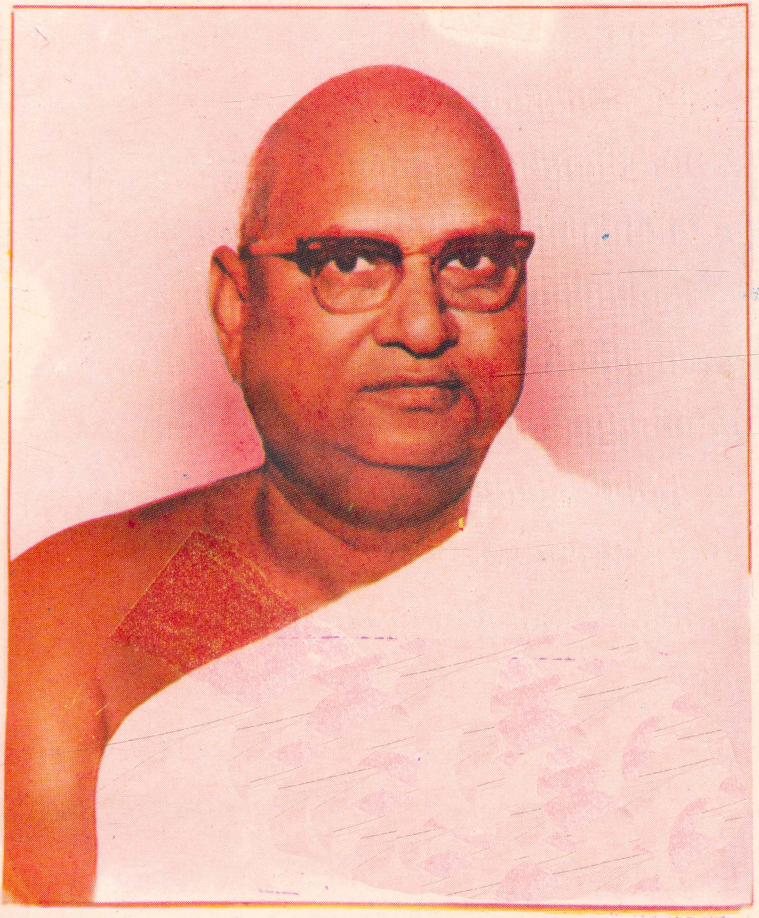

स्व. आ. वि. श्री रत्नशेखरसूरीजी म.सा.

जन्म	:	पोष वद-७	संवत	१९७३	मालवाडा
दीक्षा	:	जेठ वद-४	संवत	१९९४	महेसाणा
पन्यासपद	:	महा सुद-५	संवत	२०१५	भाभर
आचार्यपद	:	फागण वद-७	संवत	२०२९	सांगली
स्वर्गवास	:	जेठ वद-६	संवत	२०३८	पालनपुर

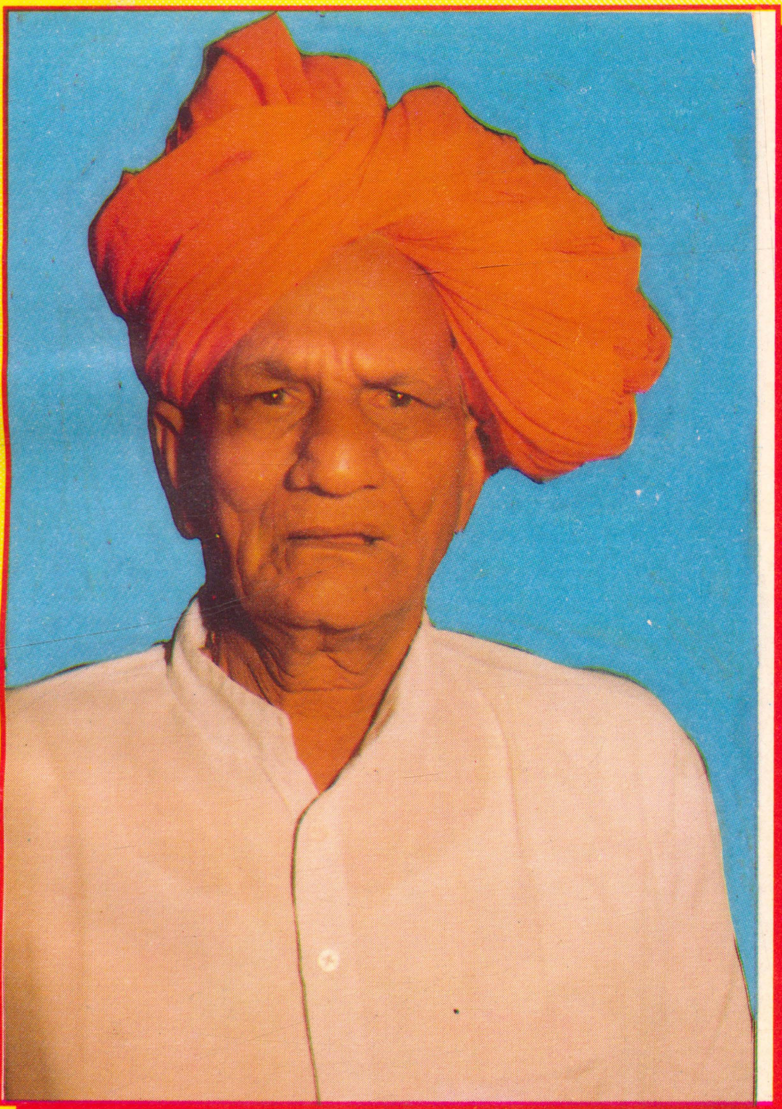

(स्व.) पिताश्री हंजारीमलजी वन्नाजी बुरड

मातुश्री पारुलबेन हंजारीमलजी बुरड

प्रस्तावना

अनादि काल से मानव का भौतिक युग के प्रति आर्कषण सविशेष है । उस आकर्षण के कारण आध्यात्मिक ज्ञान से दिन - प्रतिदिन विमुख होता जा रहा है । एसी परिस्थिति में मानव को मानवता एवं महात्मा के प्रति आकर्षण या लगाव करवाना हो तो कुछ न कुछ निमित्त की आवश्यकता रहती है, वर्तमान जगत में मानवी बुद्धि शाली है ज्ञान की प्राप्ति में पुरूषार्थ भी ज्यादा करता है लेकिन लक्ष भौतिक समाग्री हेतु। वह ही बुद्धि आध्यात्मिक ज्ञान के प्रति आकर्षण एंव पुरुषार्थ करे तो इसी मानव को योगी बनने में ज्यादा समय नहिं लग सकता ।

योगी के प्रति रुचि पैदा करने में ज्ञान योग (सभी से विशिष्ट आकर्षण है तो) क्रिया योग भक्ति योग तीन योग का साधन उपलब्ध है। तीनों में विशेष उपकार करने वाला ज्ञान योग है, जो क्रिया योग एवं भक्ति योग में विकास करने में समर्थ है, इस हेतु से **पदार्थ प्रदीप** नाम की पुस्तिका आपके समक्ष रखने की तमन्ना हुई है । उस तमन्ना को साकार बनाने में आपका सहकार जरूरी है ।

पदार्थ प्रदीप पुस्तिका में जीव विचार के आधार से जीव के भेद प्रभेद का ज्ञान उस विषय को स्पष्टीकरण एवं पुष्टि हेतु **भगवती** सूत्र एवं **प्रज्ञापना** सूत्र **आचारांग** सूत्र आदि आगम ग्रंथो का आधार लिया गया है।

एवं **नवतत्त्व** के पदार्थो का स्वरूप तथा अपने को जो प्राप्त हुआ

शरीर उसकी रचना आयुष्य गति आगति आदि विविध विषयो का ज्ञान **दण्डक** सूत्र के द्वारा लिखा गया है । तथा क्षेत्र एवं काल का ज्ञान को प्राप्त करने हेतु **लघु संग्रहणी** का आधार ही मुख्य है इस कारण उनके आधार पर क्षेत्र एवं काल का ज्ञान भी इस पुस्तक में अन्तर्निहित है ।

चैत्यवंदन गुरुवंदन एवं प्रत्याख्यान का सूक्ष्म स्वरूप आदि का ज्ञान तीन भाष्य के द्वारा प्राप्त होता है इस पुस्तक में चैत्यवंदन के सूत्र पद वर्ण संपदा का परिचय वंदन के भेद प्रभेद स्वरूप तथा प्रत्याख्यान के शुद्ध अशुद्ध भेद का स्वरूप आदि अनेक विषय का संग्रह है ।

जड एवं चैतन्य का स्वरूप. स्वभाव एवं विभाव दशा का ज्ञान प्राप्त करने में कर्मग्रन्थ मुख्य आधार है, उसके आधार को लक्ष में रखकर कर्म के भेद प्रभेद बंध उदय सत्ता आदि का समन्वय भी है ।

द्व्यानुयोग, गणितानुयोग, चारित्रानुयोग तीनो का संग्रह इस पुस्तक में है । विभाव दशा से विमुख होने में परिणति धर्म आवश्यक है । परिणति धर्म की प्राप्ति ज्ञान एवं क्रिया के आधार पर अवलंबित है इस हेतु से आप अज्ञान रूपी अंधकार को उन्मूलन करके ज्ञान रूपी दीपक सतेज बनावे । दीपक की ज्योत ज्यादा से ज्यादा प्रकाशमान होकर ज्योतिर्मय अवस्था को प्राप्त करने में ये पुस्तिका कारण बने । यह ही अपेक्षा ।

लि.

आ. वि. श्री रत्नाकर

सूरीश्वरजी म. सा.

आभार दर्शन

2050 वर्ष के अन्तर्गत सांचोर में चातुर्मास था उस समय श्राद्धवर्य संधवी समरथमल मिश्रीमबजी की जिज्ञासा से चार प्रकरण, तीन भाष्य एवं संक्षिप्त कार्मग्रन्थ आदि का हिन्दी लीपी में संक्षिप्त पदार्थो का प्रकाशन किया जाय एसी तमन्ना हुई, समरथमलजी की जिज्ञासा परिपूर्ण होवे एवं ज्यादा से ज्यादा श्रावक श्राविका वर्ग को ज्ञान प्राप्त होवे ऐसी तमन्ना रखी, आज इच्छा पूर्ण होने जा रही है।

पुस्तक प्रकाशन में आचार्य देव श्री **रत्नशेखर सूरीजी** म. सा. के शुभ आशीर्वाद एवं समय समय पर कलिकुंड तीर्थोद्धारक आचार्य देव श्री **राजेन्द्र सूरीश्वरजी** की प्रेरणा होती रही है। सरल स्वभावी मुनि श्री **रत्नत्रय विजयजी** आदि का सम्पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ।

मुनि रत्नज्योत

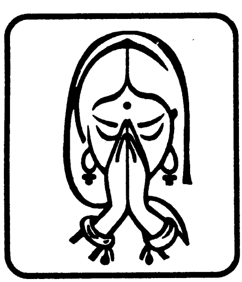

विषय पथ प्रकाशिका

	विषय मेम्बर	घर नम्बर
1.	जीवो के प्रकार	1.
2.	पांच स्थावर का स्वरूप- व चैतन्यसिद्धि	1.
3.	वनस्पति का विशेष वर्णन	2.
4.	सूक्ष्म निगोद का स्वरूप	3.
5.	नरक की दस वेदना	3.
6.	तिर्यञ्च एवं मनुष्य के प्रकार	4.
7.	देव के भेद	5.
8.	नरकादि की अवगाहना व आयुष्य	6.
9.	पल्योपम का स्वरूप	7.
10.	द्रव्य प्राण	7.
11.	मृत्यु की पहचान	8.
12.	हेय ज्ञेय उपादेय तत्त्व	8.
13.	जीव के भेद व उसके लक्षण	8.
14.	पर्याप्ति का स्वरूप	9.
15.	अजीव के भेद	10.
16.	कालचक्र कावर्णन	11.
17.	पुण्य पाप की चतुर्भङगी	12.
18.	आश्रव तत्त्व	12.
19.	पच्चीश क्रिया	13.
20.	संवर तत्त्व	15.
21.	बावीश परिसह	15.
22.	यति धर्म	17.
23.	बारह शुभ भावना	18.

24.	चारित्र के भेद	19.
25.	निर्जरा तत्त्व	20.
26.	बन्ध तत्त्व (4 प्रकार का बंध)	21.
27.	कर्म की पहचान	21.
28.	कर्म की स्थिति	22.
29.	कर्म बन्ध के हेतु	23.
30.	सिद्ध के भेद	24.
31.	गति - अगति द्वार	25.
32.	चोवीश दंडक के नाम	27
33.	पांच प्रकार के शरीर व 6 संघयण	27,28
34.	सोलह संज्ञा व कर्म का निमित्त	29.
35.	छ प्रकार के संस्थान	30.
36.	चार कषाय व छ लेश्या	30, 31.
37.	इन्द्रिय भेद व सात प्रकार के समुद्घात	32.
38.	तीन तरह की दृष्टि	34.
39.	चार दर्शन व पांच ज्ञान	34.
40.	तीन अज्ञान व पन्द्रह योग	35.
41.	सात प्रकार के काययोग	36.
42.	बारह प्रकार के उपयोग	37.
43.	उपपात/च्यवन	37.
44.	किमाहार व तीन प्रकार की संज्ञा	38.
45.	गति/आगति/वेद व अल्पबहुत्व	39.
46.	चोवीश दंडक में शरीर का विभागी करण	39.
47.	सूक्ष्मादि जीवों का प्रमाण	40.
48.	शरीर की अवगाहना	41.
49.	चोवीश दंडक में संघयण व संस्थान का विभागी करण	42
50.	चोवीश दंडक में लेश्या / समुद्घात /	43.
	दृष्टि / दर्शन / योग / उपयोग	44.

51. गर्भज मनुष्य की संख्या 45.
52. उपपात - च्यवन संख्या 45.
53. नरक व देव में विरहद्वार 46.
54. अेकेन्द्रिय का आयुष्य 47.
55. आयुष्य / पर्याप्ति / आहार / संज्ञा का विश्लेषण 48/49
56. तीन वेद का विभागी करण 50.
57. संमूर्च्छिम मनुष्य व तिर्यञ्च में 24 द्वार का विश्लेषण 50.
58. कौन किससे ज्यादा 51.
59. जंबूद्वीप का प्रमाण 52.
60. वास क्षेत्र व वर्षधर पर्वत 52.
61. सो[illegible] वक्षस्कार पर्वत 53.
62. चित्र विचित्रादि पर्वत 54.
63. गजदंत व मेरू पर्वत 55.
64. पर्वत की कुल संख्या 55.
65. सहस्त्रकूट 56.
66. गिरिकूट 56.
67. सिद्धायतन व प्रासाद 56.
68. ऋषभकूट / करिकूट / जंबुकूट 57.
69. तीर्थ व श्रेणिआ 58.
70. विजय / महासरोवर 59.
71. नदी परिवार 59.
72. पर्वत की गहराई व उंचाई 61.
73. रात दिन का कारण 62.
74. वैताढ्य गुफा 63.
75. वैताढ्य के बील 64.
76. तीर्थकर / चक्री / वासुदेव की संख्या 64.
77. अभिषेक शिला व नवनिधि 65.

78. दशत्रिक का स्वरूप 66.
79. पांच अभिगम 71.
80. प्रभु दर्शन की दिशा 71.
81. परमात्मा का अवग्रह 71.
82. तीन प्रकार की वंदना 72.
83. दंडक सूत्र के पद/ संपदा तथा संपदा के आद्यपट 73.
84. बारंह अधिकार 75.
85. चार वंदनीय अेक स्मरणीय 75.
86. चार प्रकार के जिन 75.
87. चार स्तुति का अधिकार 76.
88. काउसग्ग के उपयोगी साधन 76.
89. काउसग्ग के आगार 77.
90. काउसग्ग के दोष 77.
91. स्तवन की पहचान 77.
92. चैत्यवंदन का वख्त 78.
93. मंदिर की आशातना 79.
94. वंदन के प्रकार 79.
95. अवंदनीय कीपहचान 80.
96. पांच वंदनीय 80.
97. अग्राह्य वंदन के मालिक 81.
98. वंदन का अनवसर 81.
99. वंदन का मौका 81.
100. वंदन के कारण 82.
101. पच्चीश आवश्यक 82.
102. मुहपत्ति की सचित्र प्रतिलेखना 83.
103. वंदन के बत्तीश दोष 86.
104. वंदन से फायदा 88.

105. वंदन के विरह में नुकशान 88.
106. गुरू स्थापना के प्रकार 88.
107. गुरू का अवग्रह 89.
108. वंदन के स्थान 89.
109. वंदन में गुरू के वचन 89.
110. गुरू की आशातना 90.
111. सुबह शाम के प्रतिक्रमण की संक्षिप्त विधि 92.
112. दस प्रकार के प्रत्याख्यान 92.
113. अद्धा प्रत्याख्यान के भेद 93.
114. प्रत्याख्यान उच्चार विधि व चार भेद का आहार 95.
115. आगार का अर्थ 96.
116. विगई के नीवियाते 97.
117. प्रत्याख्यान की शुद्धि 100.
118. परिशिष्ट - कर्म संबधी विवरण 101.
119. गुणस्थानक का परिचय 106.
120. क्षयोपशम की विचारणा 108.
121. कार्य के पांच हेतु 109.
122. पाप विच्छेद के हेतु. 111.
123. चार प्रकार के ध्यान 111.
124. ज्योतिष्चक्र का विशेष विज्ञान 112.
125. देव संबधी ज्ञान 112.
126. सागर का नीर. 113.
127. कोन ! कौन सी नरक में जा सकता है । 113.
128. असंख्य व अनंत की संख्या का अंदाज 114.

जीवो की विचारणा

० जीव के दो प्रकार - संसारी और सिध्द

० सिध्द - सब निरंजन निराकार होने से एक रुप ही है । संसारी अवस्था की अपेक्षा उसके पंद्रह भेद नवतत्त्व में बताये गये हैं ।

० संसारी के दो भेद - त्रस और स्थावर

० त्रसजीव - भय से कांपते है हलन चलन करते है उसके चार भेद है, बेइन्द्रियादि ।

० स्थावर - अपनी इच्छा के अनुसार हलन - चलन न कर सकें इसे स्थावर कहते है स्थावर के पांच भेद है ।

(1) पृथ्वीकाय (2) अप्काय (3) तेउकाय (4) वायुकाय (5) वनस्पतिकाय

(1) पृथ्वीकाय - खान में पत्थर, सोना, आदि बढते दिखते है, वही उसके सचेतन की निशानी है । खोदने पर मिट्टीमेंसे गर्म बाफ-भाप निकलती है ।

(2) अप्काय - अन्डे के रसमेंसे जीव बनता है, इसलिए उस रस को सचेतन माना जाता है । उसी प्रकार कुएमें अपने आप पानी बढता है और गर्मी में ठण्डा रहता है, और ठण्डी में - सर्दी के मौसम में गरम होता जिस प्रकार हमारा शरीर, यह परिवर्तन तैजस शरीर बिना नामुमकिन है इसलिए पानी खुद सचेतन है । उसमें दिखने वाले जीव भिन्न है ।

(3) तेउकाय - आग इंधन के भोगसे बढती है जैसे हमारा शरीर, वह उसके सजीव की पहचान है ।

(4) वायुकाय - वायु - अन्य किसी की प्रेरणा बिना अनियत रुप से गति करता है जैसे हम, इसलिए वह सचेतन है ।

(5) वनस्पतिकाय - वनस्पति (हरियाळी) के दो प्रकार है साधारण और प्रत्येक ।

जिन अनंत जीवो का एक ही शरीर होता है तथा वे जीव एक

साथ ही श्वासआहारादि का कार्य करते है । लेकिन पूरी निगोद के सभी जीवो का एक साथ मृत्यु नहि होता है उन्हें आवलिका का असंख्यातवां भाग लगता है ।

जिसकी सिराये / गांठ / सांधे गुप्त हो तथा जिसके किसी अंश को काट के बोया जाय तो वह उग निकलता है । काटने से समभाग होते हो वह अनंतकाय की निशानी है ।

जिनकी सिरायें आदि दिखाइ देती है वह प्रत्येक वनस्पति है जैसे - कोबीज ।

मूळ का जीव मूळ में व्याप्त होता है । फल का फलमें व्याप्त होता है थड का जीव थड में व्याप्त होता है, तो भी अेक दुसरे से प्रतिबध्ध होनेसे अंत तक आहार पहोंचता है जैसे गर्भस्थ जीव को माता का ।

○ पद्म (कमल) आदि. के वृन्त / हरी पत्ते और कर्णिका ये तीन में अेक ही जीव होता है नाळबध्ध फूलो में असंख्य जीव होते है और हर पत्ती केशरा और बीज में अेक अेक जीव होता है।

○ पापड के उपर श्वेत वर्ण की, गट्टरके आसपास काले वर्ण की निगोद होती है ।

मध के अेक बिंदु के भक्षण से 7 गांव को भस्म करने का पाप लगता है ऊंटडी व घेटी का दुध अभक्ष्य है (उपदेश प्रसाद)

○ फल के उपर कठिन कडक त्वचा (चामडी) होती है अर्थात कठिया फल उसे अस्थिबन्ध कहते है। नालियेर, अखरोट, बदाम आदि... उसमें प्रायः अेक बीज होता है ।

○ ताड नालियेर और सरल आदि वृक्षो के थड में अेक ही जीव होता है ।

○ फूल की हर पत्तीमें अेक अेक जीव होता है । वृक्ष के थड इत्यादि असंख्य जीवो से निर्मित होते है लेकिन सबका शरीर भिन्न-भिन्न होता है परन्तु अेक दूसरे से प्रतिबध्ध होने से एक जैसा लगता है । निम्ब का दन्तमंजन असंख्यात जीवो से व्याप्त होता है ।

○ कच्चे केळे सचित्त, पक्के केळे अचित, लुम्ब से सम्बध्ध (जुडेहुए) होते है तो सचित्त, ओर लुम्बसे अलग (छूटे पडते) हो तब अचित्त लुम्बसे केळा तोडने के बाद दो घडी के बाद काम आता है । हरी लुम्ब सचित्त होती है । और काली पडने पर अचित्त हो जाती है । केलो को भट्ठी की गर्मी से पकाय ज़ाता है ।

वनस्पति सजीव है, वह तो उसकी वृद्धि आदि से प्रत्यक्ष दिखता है ।

सूक्ष्म जीव जिनको चर्म चक्षु से देखना अशक्य हो तथा जिसका छेदन भेदन असंभवित है । उससे विपरीत जो एक या अनेक शरीर मिलने पर दिखाइ दे, वे बादर जीव है, पृथ्वीकाय आदि पांच सूक्ष्म बादर दोनो प्रकार के होते है ।

○ सूक्ष्म निगोद का स्वरूप - चौद राज में निगोद के असंख्य गोले है, प्रत्येक में असंख्यात निगोद शरीर है और एक एक शरीर में अनंत जीव है । इसमें जो कभी भी बहार नहि निकले वे जीव **असांव्यवहारिक** है और जो एक बार भी बहार निकल जाय उसे **सांव्यवहारिक** कहते है ।

○ जाति भव्य हंमेशा सूक्ष्म निगोद में ही रहते है

○ पूरा लोक पांच प्रकार के सूक्ष्म जीवो से भरा हुआ है । इनका आयु अंतर्मुहूर्त ही होता है ।

○ शंखादि बेइन्दिय जीव है । चिट्टी आदि तेइन्दिय जीव है। भ्रमर, शलभ, टिड्डा आदि चउरिन्द्रिय जीव है । यह सब सम्मूर्च्छिम होते है । पंचेन्द्रिय चारो गति में होते है ।

नारक पृथ्वी से नारक के सात भेद बनते है, नीचे नीचे की पृथ्वी में दु:ख ज्यादा होता है ।

○ नरक में मुख्यता से दश वेदना होती है ।

(1) **शीतवेदना** - ठण्डी इतनी ज्यादा होती है कि वह नरक का जीव हिमालय में आरामसे सो जाय ।

(2) **उष्ण वेदना** - गर्मी इतनी ज्यादा होती हे कि उसको इंट निभाडा के बीच में शांति का अनुभव होता है ।

(3) **क्षुधा वेदना** - लोक के सभी पुद्गल/धान्य का आहार करने पर भी तृप्ति नहि होती है ।

(4) **पिपासा** - (तृषा) सभी नदी, सरोवर, सागर का पानी पीने पर भी गला हंमेशा सुका रहता है ।

(5) **कण्डू** - खरज - छूरी घीसने पर भी खुजली नहि मिटती ।

(6) **परवशता** - परमाधामी की नजर से छूटकर कहां भी जा नहि शकते।

(7) **ज्वर** - अेकसो पांच डिग्री से अत्यधिक बुखार हंमेशा रहेता है ।

(8) **दाह** - भयंकर कोटी की आग उनके शरीर में जलती है ।

(9) **भय** - अवधि/विभंग ज्ञान से आगे की आपत्ति जानकर हंमेशा भयभीत रहते है ।

(10) **शोक** - उसी प्रकार हंमेशा शोक विह्वल बने रहते है

वहां मांस और सडे हुए शब से अत्यधिक दुर्गंध होती है, नीचे की भूमि छुरी के धार जैसी होती है, पहेली तीन नरक तक परमाधामी दुःख देते है। नीचे की नरक में परस्पर वेदना एवं क्षेत्रवेदना, परमाधामी की वेदनासें ज्यादातर दुखदायी होती है ।

तिर्यञ्च के तीन भेद है ।

(1) **जलचर** - मच्छी, मगर आदि

(2) **खेचर** - कबुतर आदि पक्षी

(3) **स्थलचर** के तीन भेद - (1) चतुष्पद - गाय भेंस आदि (2) उरपरिसर्प - पेट से चलने वाले साप. अजगर आदि। (3) भुजपरिसर्प - हाथ से चलने वाले नोलीया/नवेला, बंदर इत्यादि ।

इनके संमूर्च्छिम ओर गर्भज दो प्रकार है

○ मात-पिता के संयोग बिना बाह्य पुद्गल संयोग से पैदा होने वाले समूर्च्छिम । उससे विपरित गर्भज ।

मनुष्य के तीन प्रकार है ।

(1) कर्म भूमि मनुष्य - भरतादि पंदर कर्मभूमि में उत्पन्न होने वाले ○ जहां तलवार आदि का, लेखनकला आदि का तथा खेती आदि का व्यवहार चलता है उसे कर्मभूमि कहते है ।

○ जहां एसा व्यवहार नहि होता है, उसे अकर्मभूमि कहते है ।

(2) अकर्म भूमि मनुष्य - हिमवंत हरिवर्ष आदि अकर्मभूमि है ।

(3) अन्तर्द्वीप मनुष्य - ~~वैताढ्य~~ पर्वतकी और शिखरी पर्वतकी चार-चार दाढा, जो लवण समुद्र में फैली हुइ है, उसके उपर जो सात -सात द्वीप है, उसमें उत्पन्न होने वाले मनुष्य ।

मनुष्य क्षेत्र पिस्तालीश लाख जोजन प्रमाण है ।

○ अेक लाख जोजन जंबुद्वीप - यह रोटी के आकार का है ।

○ पूर्वपश्चिम चार लाख जोजन लवण समुद्र

○ आठ लाख जोजन धातकीखंड - शेष द्वीप समुद्र चुडी के आकार के है ।

○ पूर्वपश्चिम सोल लाख जोजन कालोदधि समुद्र

○ पूर्वपश्चिम सोल लाख जोजन पुष्करार्ध द्वीप कुल मिलाकर पिस्तालीश लाख जोजन ।

○ उससे आगे भी असंख्यात द्वीप समुद्र विद्यमान है, लेकिन वहां पशुपक्षी की उत्पत्ति है, मगर मनुष्य का जन्म मरण वहां नहि है ।

○ संमुच्छिम पन्चेन्द्रिय - एक मुहुर्त में ज्यादा से ज्यादा चोवीस भव करते है । गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च तथा गर्भज मनुष्य एक ही भव कर सकता है।

देव के मुख्य चार प्रकार है ।

(1) भवनपति - अधोलोकमें रत्नप्रभा के थड में अपने भवन में रहते है। उसके असुरकुमारादि दश भेद है ।

(2) व्यंतर - मूल स्थान तो अधो लोक है, तो भी ज्यादा करके तीर्च्छा लोक में बसते है ।

(3) **ज्योतिष** - सूर्य-चंद्र आदि विमान में वास करने वाले देव।

(4) **वैमानिक** - सौधर्मादि विमानमें रहने वाले ।

वैमानिक के दो भेद है ।

(1) **कल्पोपपन्न** - मनुष्य लोक समान जहां स्वामी सेवक आदि का व्यवहार होता है ।

(2) **कल्पातीत** - ऐसा व्यवहार जहां न हो वे ग्रेवेयक अनुत्तर वासी देव।

o जीव के उत्पत्ति स्थान को योनी कहते है । रूप-रस आदि के भेद से उसके चोराशी लाख भेद पडते है । एक योनी में अनेक प्रकार के जीवो की उत्पति होती है, उसे **कुलकोटी** कहते है, अथवा गोबर आदि एक में उत्पन्न होने वाले वींछी आदि में रूप, आकार आदि के भेद से अनेक प्रकार के वींछी उत्पन्न होते है, इस प्रकार से पृथ्वीकाय आदि के १२ लाख कुल कोटि इत्यादि भेद बनते है ।

उत्कृष्ट अवगाहना

नरक की अवगाहना - पांचसो धनुष

चतुष्पद की अवगाहना - छ गाउ

मनुष्य की अवगाहना - तीन गाउ

देव की अवगाहना - सात हाथ

आयुष्य

तिर्यञ्च मनुष्य का जघन्य आयुष्य - अंतमुहूर्त

देव नारक का जघन्य आयुष्य - 10,000 वर्ष

पृथ्वीकाय - 22.000 वर्ष । वायुकाय - 3,000 वर्ष ।

अप्काय - 7,000 वर्ष । प्रत्येकवनस्पतिकाय - 10.000 वर्ष ।

तेउकाय - तीन अहोरात्र । सभीका जघन्य आयुष्य - अंतमुहूर्त ।

देव नारक उत्कृष्ट आयुष्य - तेत्तीस सागरोपम ।

पल्योपम

o चार कोश लम्बे - चौडे गहरे खड्डे को युगलिक के वालाग्र से भरके

एक एक टुकडे के पृथ्वीकाय के शरीर समान असंख्य भाग की कल्पना करे, फिर उसमेंसे सो साल के बाद एक वालाग्र का कल्पित टुकडा निकाले, इस प्रकार पूरा खड्डा खाली होवे तब अेक अद्धा पल्योपम होता है।

o दस कोडाकोडी पल्योपम - **सूक्ष्म अद्धा सागरोपम**

(अेक अंगुली लम्बे पंहोले क्षेत्र में 20,97,152 वालाग्र आते है)

o अेक अेक समये कल्पित अंश को निकालते **सूक्ष्म उध्धार पल्योपम** होता है ।

o ढाई उध्धार सागरोपम के समय की संख्या प्रमाण द्वीप समुद्र है ।

वालाग्र से स्पृष्ट आकाश प्रदेश को निकालने में जितने समय लगे उतनी संख्या का एक **सूक्ष्म क्षेत्र पल्योपम** होता है. ।

o अेकेन्द्रिय जीव निजीरूप में असंख्याती उत्सर्पिणी अवसर्पिणी तक उत्पन्न हो सकते है इसे स्वकाय स्थिति कहते है ।

o विकलेन्द्रिय की स्वकाय स्थिति संख्याता भव है ।

o पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च मनुष्य की स्वकाय स्थिति में 7/8 भव है

o देव नारक की स्वकाय स्थिति नहि होती है ।

जीव के दस द्रव्य प्राण है ।

5. पांच इन्द्रिय 6. आयुष्य 7. श्वासोश्वास 8. कायबल 9. वचनबल 10. मनबल

o स्थावर में - स्पर्शेन्द्रिय, कायबल, आयुष्य, श्वासोश्वास ये चार द्रव्य प्राण होते है ।

o बेइन्द्रिय में - रसनेन्द्रिय और वचनबल मिलाने से छ प्राण जैसे की भमरादि गुंजन करते है इस लिए उन में वचन बल माना गया है ।

o तेइन्द्रिय में - घ्राणेन्द्रिय युक्त करने से सात प्राण

o चउरिन्द्रिय में - चक्षुरिन्द्रिय मिलाने से आठ प्राण

o असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय में - श्रोत्रेन्द्रिय मिलाने से नव प्राण

o संज्ञी पञ्चेन्द्रिय में - मन बल मिलाने से दस प्राण

इन द्रव्य प्राण को धारण करने की अपेक्षा से संसारी जीव का जीवन होता है, और वियोग होने से मरण।

लेकिन आत्मा तो अमर रहेती है, मगर दर्शन ज्ञान चारित्र रूप भाव प्राण को कर्म के क्षयोपशम अनुसार भिन्नता प्राप्त होती है।

नव तत्त्व

जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध, मोक्ष ये नो जगत के मूलभूत पदार्थ है। अर्थात इनो के आधार पर पूरा जगत है।

1. जीव, अजीव - ज्ञेय - जानने -पहचानने योग्य है।
2. पाप, आश्रव, बंध - सर्वथा हेय - छोडने जैसे है।
3. पुण्य - उपर की भूमिका प्राप्त करने पर त्याज्य, उससे पहले सहायक होने से उपादेय भी है।
4. संवर, निर्जरा, मोक्ष - उपोदय है / स्वीकारने योग्य है।

जीव तत्त्व

जीव के चौद भेद है।

(1) सूक्ष्म अेकेन्द्रिय
(2) बादर अेकेन्द्रिय
(3) बेइन्द्रिय
(4) तेइन्द्रिय
(5) चउरिन्द्रिय
(6) असंज्ञी पन्चोन्द्रिय
(7) संज्ञी पन्चोन्द्रिय

पर्याप्ता और अपर्याप्ता से 14 भेद होते है।

जीव के छ लक्षण

(1) ज्ञान (2) दर्शन (3) चारित्र (4) तप (5) वीर्य (6) उपयोग

1. ज्ञान् - पदार्थ की विशेष रूप से जानकारी।
2. दर्शन - पदार्थ पर द्रष्टिपात करने मात्र से प्राप्त सामान्य जानकारी।
3. चारित्र - मोहनीय कर्म का क्षयोपशमादि रूप शुभ भाव युक्त शुभ

आचरण । सर्व जीवो के आत्मप्रदेश कुछ/अंशतः कर्म से अनावृत ही होते अतः अल्प चारित्र तो सर्व जीव में संभवित है ।

4. तप - इच्छा के निरोध स्वरूप बाह्य/आंतरिक तप ।

5. वीर्य - (पुरूषार्थ) प्रवृतिरूप सामर्थ्य ।

6. उपयोग - इन पांच में अपनी शक्ति का प्रयोग करना ।

छ प्रकार की पर्याप्ति

(1) आहार (2) शरीर (3) इन्द्रिय (4) श्वासोश्वास (5) भाषा (6) मन ।

पर्याप्ति - पुद्‌गल की सहायता से आहारादि सर्जन करने की शक्ति विशेष।

1. आहार पर्याप्ति - उत्पत्ति स्थान में रहे हुए आहार योग्य पुद्‌गलो को जीव जिस शक्ति द्वारा ग्रहण करता है, और उन्हे मल-मूत्रादि रूप तथा रस के रूप में बदलता है, वह शक्ति आहार पर्याप्ति ।

2. शरीर पर्याप्ति - जीव जिस शक्ति से रस परिणत पुद्‌गलो को सात धातु के रुप में बदलता है वह शरीर पर्याप्ति ।

3. इन्द्रिय पर्याप्ति - जीव जिस शक्ति से शरीर रूप में परिणत पुद्‌गलो में से इन्द्रिय योग्य पुद्‌गलो को ग्रहण करके इन्द्रिय रूप में परिणत करता है, वह शक्ति इन्द्रिय पर्याप्ति ।

4. श्वासोच्छवास - जिस शक्ति से जीव श्वास/सांस योग्य पुद्गलो को ग्रहण करके श्वास रुप में बदलता है, और उसका ही अवलंबन लेकर नाईट्रोजन के रुप में बहार निकालता है, वह शक्ति श्वासोच्छवास पर्याप्ति ।

5. भाषा पर्याप्ति - श्वासोच्छवास की तरह भाषा योग्य पुद्‌गल ग्रहण करके विसर्जन करने की शक्ति विशेष ।

6. मन पर्याप्ति - श्वासोच्छवास की तरह मन योग्य पुद्‌गल ग्रहण करके विसर्जन करने की शक्ति विशेष ।

अजीव तत्त्व

○ अजीव के चौद प्रकार है ।

धर्म - अधर्म और आकाश इन तीन के स्कंध, देश, प्रदेश तीन-तीन भेद =9/ और पुद्‌गल में परमाणु के साथ चार भेद 9+4=13 और एक काल का भेद + 14 भेद ।

स्कंध - वस्तु का सम्पूर्ण भाग ।

देश - वस्तु का विभाज्य भाग ।

प्रदेश - वस्तु से जुडा हुआ वस्तु का अविभाज्य भाग ।

१. धर्मास्तिकाय - लोक व्यापी तथा अरुपी है, तथा जीव पुद्‌गल जो गति में प्रवृत्त होते है उनको मदद करता है ।

2. अधर्मास्तिकाय - लोक व्यापी । अरुपी तथा जीव पुद्‌गल जो स्थिर रहते है उनको मददरुप बनता है ।

3. आकाशास्तिकाय - यह द्रव्य लोकालोक व्यापी है । यह सब द्रव्य को अवकाश-जगह देता है । जैसे दीवार में किलीका चली जाती है । अरुपी है ।

4. पुद्‌गलास्तिकाय - जिस में परमाणु के आवन - जावन से वृध्धिहानि होती रहती है । वह पुद्‌गल है । शरीर, भाषा, मन आदि दिखाई देनेवाले सब जड पदार्थ पुद्‌गल द्रव्य है । इसमें परमाणु रुप चोथा भेद भी होता है ।

5. परमाणु - मूल वस्तु से अलग (जूदा) पडा हुआ अविभाज्य भाग ।

6. प्रदेश - द्रव्य से जुडा हुआ होता है । इतना ही दोनों में भेद है ।

7. काल - वर्तमान एक समय रुप कालद्रव्य है । यह पुराना है, यह इससे नवीन है एसी प्रतीति में उपयोगी होता है । हर समय नष्ट होता रहता लेकिन उसकी काल्पनिक गिनती का संचय करके नये पुराने का व्यवहार पर्दाथ में होता है । मास वर्ष इत्यादि की कल्पना की जाती हैं । भूत, भावि समय विद्यमान न होने से काल का एक ही भेद है ।

अवसर्पिणी + उत्सर्पिणी = कालचक्र

1. सुषम सुषमा -

चार कोडाकोडी सागरोपम, आहार - तीन दिन में तुवर प्रमाण

आयुष्य - तीन पल्योपम, पांसली - मांसपेशी - 256

शरीर - तीन कोश संतति पालन - 49 दिंन

2. सुषम -

तीन कोडाकोडी सागरोपम, आहार - दो दिन में बोर प्रमाण

आयुष्य - दो पल्योपम, पांसली - 128

शरीर - दो कोश संतति पालन - 64 दिन

3. सुषम - दु:षम -

दो कोडाकोडी सागरोपम, आहार - एक दिन में आवला प्रमाण

आयुष्य - एक पल्योपम, पांसली - 64

शरीर - एक कोश संतति पालन - 79 दिन

4. दु:षम - सुषम -

42.000 वर्षन्युन शरीर 500 धनु. आहारादि अनियत

अेक कोडाकोडी सागरोपम,

आयुष्य - पूर्व कोटी वर्ष

5. दु:षम -

21,000 वर्ष आयुष्य - 130 वर्ष शरीर - 7 हाथ

आहारादि अनियत

6. दु:षम - दु:षम -

आयुष्य : वीस वर्ष शरीर - दो हाथ 6 सालमें गर्भ धारण

○ इस काल में ज्यादातोर प्रजा मांसाहारी होती है। अत: दुर्गति में जाती है। लेकिन कुछ लोग समकिती भी होते है, वे घास का भक्षण करते है, और सद्गति को भी प्राप्त करते है। भाई-बहेन आदि का व्यवहार नहि

होता, अतः पशु की तरह मर्यादा भंग करते है ।

○ विपरीत रूप से उत्सर्पिणी होती है ।

- **पुण्यतत्व** - देव-मनुष्य गति, सुख का अनुभव । सुंदर सामग्री की प्राप्ति, निरोगी काया ये सब पुण्य प्रकृति का फल है ।

○ सात क्षेत्र का यथोचित कृत्य करने से पुण्य का बंध होता है जिनालय, जिनबिंब, जिनागम, साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका ये सात क्षेत्र है ।

○ अनुकंपादान तथा अकामनिर्जरा अज्ञान तप से भी पुण्य बंध होताहै।

1. पुण्यानुबंधी पुण्य - जिस पुण्य के उदय में नये पुण्य का बंध होता है । शालीभद्र....

2. पापानुबंधी पुण्य - जिस पुण्य के उदय में नये पाप का बंध होता है । वेश्या.....

3. पुण्यानुबंधी पाप - जिस पाप के उदय में नये पुण्य का बंध होता है । पुणिया श्रावक.....

4. पापानुबंधी पाप - जिस पाप के उदय में नये पाप का बंध होता है । कालसौरिक कसाई.....

पापतत्व - दुःख के अनुभव का मूल कारण पापतत्त्व है, जैसे की नरकगति, तिरस्कार की प्राप्ति, कुरूप, अज्ञानता इत्यादि।

आश्रव तत्व

आश्रव - जिस के द्वारा आत्मा में शुभ-अशुभ कर्म का आगमन हो ।

1. इन्द्रिय - भौतिक इन्द्रिय के स्व स्व विषय में आसक्ति से अशुभ कर्म का बंध होता है । उनको यदि प्रभु भक्ति आदि में जोडा जाय तो शुभ कर्म का बंध होता है ।

2.कषाय - स्वार्थ के लिए क्रोधादि करना, परमार्थ हो तो शुभ कर्म बंध।

3. अविरति - व्रत-नियम रहित जीवन, हिंसादी पाप नहि करने पर भी उस का प्रतिबंध न होने के कारण उस संबंधी पाप लगता रहता है ।

इसी कारण एकेन्द्रिय पुनः पुनः स्वकाय में उत्पन्न होते है । उधार पैसे का उपभोग न करने पर भी ब्यांज तो अवश्य लगता है ।

4. मन-वचन-कायाकी निषेध-अशुभ में प्रवृत्ति करने से अशुभ कर्म, विहित-पूजा पाठादि में प्रवृत्ति से शुभ कर्म बंध होता है। निम्न क्रियाओ से अशुभ कर्म का बंध होता है। उपरोक्त चार हेतु में उसका समावेश होने पर भी शिष्य को स्पष्ट समझाने के लिए उसका विवरण किया जाता है ।

पच्चीश क्रिया

1. कायिकी क्रिया - जयणा / उपयोग रखे बिना कार्य करना, जैसे हरी वनस्पति नीलफुग - निगोद पर चलना ।

2. अधिकरणिकी क्रिया - जीव विनाशक नये शस्त्र बनाना/ सुधारना।

3. प्राद्वेषिकी क्रिया - जीव/अजीव पर द्वेष करना । ठोकर लगने पर ``यह पत्थर कहां से बीच में आया'' इस प्रकार क्रोध करना ।

4. पारितापनिकी क्रिया - स्व पर को दुःख उपजाने वाली प्रवृत्ति करना ।

5. प्राणातिपातिकी क्रिया - किसी भी प्राणी का वध करना ।

6. आरंभिकी क्रिया - छ काय का वध हो/वध की संभावना हो, एसा आरंभ समारंभ करना, जैसे मकान बनाना ।

7. पारिग्रहिकी क्रिया - धन धान्यादि का ममत्व भाव से संग्रह करना ।

8. माया प्रत्ययिकी क्रिया - छल-कपट से दूसरे को ठगना ।

9. मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी क्रिया - जिनेश्वर के वचन पर अश्रद्धा करना।

10. अप्रत्याख्यानिकी क्रिया - व्रत/पच्चक्खाण आदि न करना ।

11. दृष्टिकी क्रिया - इष्ट पर राग की दृष्टि, अनिष्ट पर द्वेष की दृष्टि रखना ।

12. स्पृष्टिकी क्रिया - राग भाव से जड - चेतन पदार्थ को स्पर्श करना ।

13. प्रातित्यकी क्रिया - अन्य की रिद्धि-सिद्धि देखकर राग-द्वेष करना। राग - अरे !! क्या मस्त गाडी है । द्वेष - साला !! मेरे से पीछे आया तो भी गाडी खरीद ली... ।

14. सामंतोपनिपातिकी क्रिया - अपनी रिद्धि की प्रशंसा सुनकर खुश होना ।

15. नैशस्त्रिकी क्रिया - राजा की आज्ञा से दूसरे के पास शस्त्रादि करवाना ।

16. स्वाहस्तिकी क्रिया - आपघात करना । दूसरे साधन या हाथ से किसीको पीटना ।

17. आज्ञापनिकी क्रिया - आज्ञा करके पापव्यापारादि कार्य करवाना ।

18. विदारणिकी क्रिया - जीव/अजीव फोटा आदि फाडना, कलंक लगाना ।

19. अनाभोगिकी क्रिया - उपयोग बिना शून्य चित्त से कार्य करना ।

20. अनवकांक्ष प्रत्ययिकी क्रिया - स्वं पर के हित का विचार कीये बिना उभय लोक विरुध्ध कार्य करना ।

21. प्रायोगिकी क्रिया - मन-वचन-काया से अशुभ क्रिया करना ।

22. सामुदानिकी क्रिया - समूह में मिलकर हिंसादि पाप करना। (पिकनीक पोईन्ट पर किसी की मश्करी-उपहास करना) फिल्म में एक साथ खुश होना इत्यादि ।

23. प्रेमिकी क्रिया - प्रेम/राग करना, या एसे वचन बोलना।

24. द्वेषिकी क्रिया - द्वेष/क्रोध करना, द्वेष उत्पन्न होवे एसे वचन बोलना ।

25. इर्यापथिकी क्रिया - मार्ग में गमनागमन करना, या केवल योग निमित्त से क्रिया करना ।

संवर-तत्त्व

- आश्रव को रोकनेवाला संवर है, उसके समिति आदि 57 भेद है ।

समिति - आगम के अनुसार प्रवृत्ति करना ।

1. इर्यासमिति - यतना पूर्वक युग-3/4 फुट प्रमाण आगे की भूमि को देखते-देखते चलना ।

2. भाषा समिति - निरवद्य, निर्दोष, उचित स्वर से मुहपत्ति का उपयोग करके प्रियकर / हितकर बोलना ।

3. एषणा समिति - बेंतालीस दोष से शुध्ध आहार ग्रहण करना ।

4. आदानभंडमत्त निक्षेपणा समिति - वस्त्र पात्रादि को देखकर प्रमार्जना करके लेना व रखना ।

5. पारिष्ठापनिका समिति - त्याज्य द्रव्य (मल-मूत्रादि) यतना पूर्वक निर्जीव भूमि पर छोडना / डालना ।

1. मनो गुप्ति - अशुभ विचार से मन को दूर/गुप्त रखना / शुभमें मन परोना ।

2. वचन गुप्ति - सावद्य, पापकारी वचन न बोलना, मौन रखना

3. कायगुप्ति - शरीर से सावद्य प्रवृति नहि करना । शुभमें प्रवृत्ति करना ।

बावीस - परिषह

संयम मार्ग से भ्रंष्ट न होवे और कर्म की निर्जरा के लिए आने वाले उपद्रवो को शम भाव से सहन करना वह परिषह जय है

1. क्षुधा परिषह - निर्दोष आहार न मिले तो भूख सहन करना, लेकिन दोषित आहार न लेना ।

2. तृष्णा परिषह - प्यास को सहन करना, लेकिन सचित्त पानी न पीना ।

3. शीत परिषह - कडाके की ठंडी को सहन करना, लेकिन अग्नि से ठंडी को दूर न करना।

4. उष्ण परिषह - गर्मी को सहन करना, लेकिन पंखे आदि से गर्मी को दुर न करना।

5. दंश परिषह - दांस -मच्छरादि की पीडा को सहन करना, लेकिन खिन्न न होना।

6. अचेल परिषह - शरीर को ढकने के लिए जीर्ण शीर्ण सादे वस्त्र का उपयोग करना, लेकिन नयी फेशन वाले किमती वस्त्र का उपयोग न करना, वस्त्र फट जाने पर भी खेद न करे।

7. अरति परिषह - मन चाही वस्तु की अप्राप्ति में मन को उद्वेग ग्रस्त न बनाना तथा संयम में तकलिफ पडने पर भी चारित्र के उपर अरति / नाखुश मन न बनाना।

8. स्त्री परिषह - स्त्री के रंग रूप देखकर मोहित न बनना।

9. चर्या परिषह - एक गांव से दूसरे गांव विहार करना उसमें आती हुई कठिंनाई को सहन करना।

10. निषद्या परिषह - श्मशान, शून्य घर में ध्यान करते उपद्रव को सहन करना।

11. शटया परिषह - उंची -नीची भूमि हवा प्रकाशादि के अभाव के कारण प्रतिकूल वसति में संथारा करना। लेकिन मन से खेद उत्पन्न न करना।

12. आक्रोश परिषह - कटु कठोर वचन को समभाव से सहन करना।

13. वध परिषह - कोइ पत्थरादि से मारे या प्राणांत कष्ट दे, तो भी उसका सामना न करे, उसके उपर शुभ भाव रखे।

14. याचना परिषह - संयम जीवन निर्वाह के लिए उपयोगी पदार्थ को मांगने में शरम न रखे।

15. अलाभ परिषह - निर्दोष भिक्षा की प्राप्ति के लिए अनेक घर फिरे फिर भी यदि गोचरी न मिले, तो तपोवृध्धि समजना मगर उद्वेग न करे।

16. रोग परिषह - रोग आने पर भी दोषित दवाई से इलाज न करें, सहन करें ।

17. तृण-स्पर्श परिषह - कांटा डाभ आदि के संथारे पर सोवे, कांटा आदि छुभने से पीडा हो तो सहन करे, लेकिन उद्वेग न करना ।

18. मल परिषह - पसीने के कारण शरीर मलिन होवे तो भी स्नान की इच्छा न करें ।

19. सत्कार परिषह - सत्कार सन्मान आदि प्राप्त होने से गर्व न करे ।

20. प्रज्ञा परिषह - हम बडे विद्वान है, एसा गर्व न करें ।

21. अज्ञान परिषह - महेनत करने पर भी कुछ याद न होवे तो कर्म-विपाक समजना लेकिन हताश न होना । अन्य की इर्ष्या न करें ।

22. सम्यक्त्व परिषह - जिन भाषित क्चन में शंका न करें, समजने के लिए प्रयत्न करे ।

दस प्रकार का यतिधर्म

1. क्षमा - क्रोध का त्याग करना, और समता भाव रखना ।
2. मृदुता - नम्रता, लघुता रखना , अभिमान का त्याग करना ।
3. आर्जव - कुड-कपट, माया, आदि का त्याग करना ।
4. मुक्ति - लोभ वृति का त्याग करना, जीवन में संतोष रखना ।
5. तप - इच्छा का निरोध करना, बार प्रकार के तप का सेवन करना।
6. संयम - इन्द्रिय का दमन करना, प्राणातिपात आदि पाप से अटकना ।
7. सत्य - प्रिय हितकारी सत्य वचन बोलना ।
8. शौच - मन, वचन, काया की पवित्रता (शुध्धि) रखनी ।
9. अकिंचनत्व - धनादि सर्व ममत्वरूप परिग्रह का (मूर्च्छा) का त्याग करना ।

10. ब्रह्मचर्य - मैथुन का त्याग करना, संपूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करना।

'' बार प्रकार की भावना ''

1. अनित्य भावना - इस संसार में सभी पौद्गलिक पदार्थ नश्वर है।
2. अशरण भावना - अरिहंतादि के अलावा इस संसारमें कोई शरणभूत नहि है।
3. संसार भावना - इस संसार में दु:ख ही दु:ख है, सारभूत तो केवल मोक्ष है।
4. अेकत्व भावना - इस संसारमें हमारा कोइ नहि है, जीव अकेला ही सुख दुख का अनुभव करता है।
5. अन्यत्व भावना - देह से आत्मा भिन्न है, संसारी सबंध सब झूठे है।
6. अशुचि भावना -- मांस.चरबी वीर्य आदि सात धातु से बना हुआ शरीर दुर्गंधमय है। हर पल उसमेंसे अशुचि निकलती रहती हैं।
7. आश्रव भावना - में यदि आश्रव के द्वारा कर्म का चयन करते रहूंगा तो संसार का अंत कब होगा।
8. संवर भावना - यदि यह तत्व नही होता तो कर्म का प्रवाह नहि अटकता, इस लिए ज्यादा से ज्यादा संवर का आचरण हितावह है।
9. निर्जरा भावना - अकाम निर्जरा से कर्म का क्षय होता है, लेकिन वापिस कर्म बंध हो जाता है, अब तो में बारह प्रकार के तप का सेवन कर कर्म निर्जरा करूंगा।
10. लोक स्वभाव भावना - चौद राजलोक के संस्थानादि स्वरूप का विचार करना। धर्मास्तिकायादि छद्रव्य का विचार करना।
11. बोधि दुर्लभ भावना - समकित की प्राप्ति इस संसार में बहोत ही दुर्लभ है।

12. धर्म भावना - में पुण्यशाली हूं कि मेरे को धर्म आराधना प्राप्त हुई है, यही कर्म लघुता का स्वरूप है । धर्म के प्रभाव से जगत पर कुदरत की महेर रहेती है, यह धर्म अनाथ का नाथ है। इस लोक में व परलोक में जो सुख मिलता है, वह इसी धर्म का प्रभाव है ।

चारित्र के पांच भेद

1. सामायिक चारित्र - सर्व पाप व्यापार का त्याग, इसके दो भेद है । (1) यावत्कथित - जीवनभर होता है । (2) इत्वरकथित - थोडे समय के लिए । (सामयिक पौषधादि में)

2. छेदोपस्थापनीय चारित्र - पांच महाव्रत के उच्चारण पूर्वक जो वडी दीक्षा होती है तथा तीर्थसंक्रान्ति में ।

3. परिहार विशुध्धि चारित्र - विशेष आत्म शुध्धि की भावना से गच्छ से अलिप्त रहकर 18 महीने की आराधना करना । इसका स्वीकार केवलज्ञानी, गणधर, पूर्व में जिसने यह कल्प स्वीकारा हो उसके पास किया जा सकता है । छ महीने तक चार साधु छठ, अठम तप करते है । चार साधु उनकी सेवा करते है। अेक वाचनादाता होता है वे पांच भी हंमेशा आंबिल करते है। फिर दूसरे चार तप करते है, पूर्व के चार सेवा करते है, फिर छ महीने तक वाचनाचार्य तप करते है, 7 साधु सेवा करते है, अेक वाचनाचार्य बनता है ।

4. सूक्ष्म संपराय चारित्र - दशमें गुणस्थानक पर सूक्ष्म लोभ का उदय होता है, उस गुणस्थानकवर्ती साधु को यह चारित्र होता है ।

5. यथाख्यात चारित्र - परमात्माने जिस प्रकार के चारित्र का आख्यान / विधान किया है, वैसा निर्मल चारित्र; यह अग्यारा से चौद गुणठाणे तक होता है ।

निर्जरा तत्त्व

छ बाह्य तप

1. अनशन - अशन, पान, खादिम, स्वादिम ये चार प्रकार के आहार का त्याग करनां इसके दो भेद (1) इत्वरकथित - थोडे समय के लिए - उपवास आदि (2) यावत्कथित - जीवन के अंत तक आहार का त्याग करना ।

2. उणोदरी - पुरूष के 32 व स्त्री के 28 कवल का आहार शास्त्र में बताया है । उससे कम आहार लेना ।

3. वृत्ति संक्षेप - द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से आहारादि में प्रमाण तय करना । जेसे दक्षिण क्षेत्र के दोपहर के समये अल्प मूल्य वाले गऊं की रोटी में ग्रहण करूंगा ।

4. रस त्याग - छ प्रकार की बिगईमेंसे अेक या उससे ज्यादा विगई का त्याग करना । दूध, दही, घी, तेल, गुड, पकवान ।

5. कायक्लेश - कर्म का क्षय करने के लिए शरीर को लोच विहारादि का कष्ट देना ।

6. संलीनता - शरीर के अंगोपांग का पूरे पूरा ध्यान रखना, स्थिर रखना ।

'' छ अभ्यन्तर तप ''

1. प्रायश्चित्त - जीवन में कीये हुए पापो की शुध्धि के लिए गुरु के पास पश्चाताप पूर्वक पाप प्रगट करना ।

(प्रायश्चित्त के 10 प्रकार है)

2. विनय - देव गुरु वडिल आदि का विनय बहुमान आदि करना ।

3. वैयावृत्य - संयमी, तपस्वी, ग्लानादि 10 प्रकार के महात्माओ की आहार, वस्त्र, वसति आदि से भक्ति सेवा करना ।

4. स्वाध्याय - वाचनादि पांच प्रकार से जिनागमादि की भक्ति करना।
5. ध्यान - आर्त रौद्र ध्यान को छोडके धर्म-शुक्ल ध्यान करना ।
6. कायोत्सर्ग - काया को पापव्यापार से रोकना और शुभ भाव में प्रवृति करना ।

बंध-तत्त्व

प्रकृति, स्थिति, रस और प्रदेश इस चार प्रकार से कर्म का बंध आत्मा करता है ।

1. प्रकृति बंध - कर्म के स्वभाव का तय होना, जैसे यह कर्म ज्ञान को आवृत्त करेगा इत्यादि ।
2. स्थिति बंध - यह कर्म कितने समय तक आत्मा के साथ टिकेगा ।
3. रस बंध - यह कर्म तीव्र रस से उदय में आयेगा इत्यादि निश्चित होना । लेश्या कषाय जनित मन परिणाम के अनुसार शुभ प्रवृति में कषाय की मंदता से तीव्रतम शुभ कर्म में रस पडता है, अशुभ प्रवृत्ति में कषाय की तीव्रता से अशुभ कर्म में तीव्रतम रस पडता है ।
4. प्रदेश बंध - जीव प्रदेशो के साथ कर्म प्रदेशो का जुडना, योग (मन, वचन, काया का व्यापार) की उत्कृष्टता से ज्यादा कर्म प्रदेश आत्मा से छिपकते है, योग की मंदता पर अल्प कर्म प्रदेश आत्मा से जुडते है ।

कर्म का परिचय

1. ज्ञाना वरणीय - आंख पे पट्टी लगाने से हमे कुछ दिखता नहि है, उसी प्रकार इस कर्म के उदय से हमें कुछ ज्ञान नहि होता है ।
2. दर्शनावरणीय - द्वारपाल यदि रोक ले तो हम अन्दर बेठे राजा को देख नहि सकते है, उसी प्रकार इस कर्म के उदय से सामान्य ज्ञान आवृत हो जाता है, जिससें हमको बहेरापन, अंधापन आदि प्राप्त होता है ।

3. वेदनीय - मधु से लिप्त तलवार की धार को चाटने से जीभ कट जाती है, मधु के स्वाद में सुख, जीभ कटने से दुःख। उसी प्रकार शाता वेदनीय से सुख मिलता है, मगर उसमें आसक्ति रखने से अशाता का बंध होता है।

4. मोहनीय - मदिरा पान से विवेक नष्ट होता है, उसी प्रकार इस कर्म के उदय से सत् असत् का विवेक नष्ट होता है।

5. आयुष्य - किसी भी गति में-नारकादिभवमें निश्चित समय तक जकड के रखना, जैसे जेल में कैदी रखा जाता है।

6. नाम - चित्रकार जैसे नये नये चित्र बनाता है, इसी प्रकार इस कर्म के उदय से जीव को शरीर, अंगोपांग, वर्णादि, रुपवान, कुरुपी, लोकप्रिय, अप्रिय, मधुर आवाज, कठोर, कर्कश अवाज इत्यादि प्राप्त होता है।

7. गोत्र - कुंभकारने बनाया हुआ घडा मदिरा भरने के कार्य में या मांगलिक कार्य में प्रयोग किया जाता है अर्थात् धिक्कारभाव व सन्मान भाव प्राप्त होता है। इसी तरह उच्चगोत्र के उदय से उच्चकुल वैभवादि प्राप्त होता है और उसमें मद करने से नीचगोत्र का उदय होता है, उससे हलके कुल आदि प्राप्त होते है।

8. अंतराय - भंडारी जैसे शेठ को दान देते रोकता है, उसी प्रकार संपत्ति आदि उपलब्ध होने पर भी इस कर्म के उदय से जीव दान-भोग आदि नही कर सकता है।

आठ कर्म की स्थिति

○ ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय ये चार कर्म की जधन्य स्थिति - अंतर्मुहुर्त

○ उत्कृष्ट स्थिति - 30 कोडा कोडी सागरोपम।

○ नाम और गोत्र की जघन्य स्थिति - 8 मुहुर्त

○ उत्कृष्ट स्थिति - 20 कोडाकोडी सागरोपम

○ मोहनीय की जद्यन्य स्थिति - अंतर्मुहुर्त

○ उत्कृष्ट स्थिति - 70 कोडाकोडी सागरोपम

○ आयुष्य की जघन्य स्थिति - अंतर्मुहुर्त

○ उत्कृष्ट स्थिति - 33 सागरोपम

कर्म बंध के कारण

1. ज्ञानावरणीय कर्म का बंध - ज्ञान और ज्ञानी की आशातना करनेसे पढने में अंतराय करने से, कागज उपर सोने से, ज्ञानके साधनोको पेशाब व संडास में साथ ले जाने से, थुंक लगाने से, पेन मुंह में डालने से, पेन से हाथ उपर लिखने से इत्यादि ।

2. दर्शनावरणीय कर्म का बंध - जिनदर्शन करने वाले को रोकने से, सिनेमा नाटक आदि देखने में रुचि करने से, इन्द्रियो का दुरुपयोग करने से ।

3. वेदनीय कर्म का बंध - देव गुरु की भक्ति बहुमान करनेसे शातावेदनीय कर्म का बंध, कीसी को भी दु:खी करने से अशाता वेदनीय कर्म का बंध ।

4. मोहनीय कर्म का बंध - कषाय आदि में ज्यादा रक्त रहने से, उन्मार्ग देशना से, देवद्रव्य के भक्षण से ।

5. आयुष्य कर्म का बंध - तपस्यादि करने से देवायु का बंध, सरल परिणामी दयालु/अल्पकषायी होने से मनुष्य आयु का बंध, कपट माया रखने से तिर्यंचायु का बंध / रौद्र भावसे महारंभादि परिग्रह से नरकायु का बंध होता है ।

6. नाम कर्म का बंध - सरलता व गारव रहित से शुभ नाम कर्म का बंध और गर्व करने वाले को अशुभ नाम कर्म का बंध होता है ।

7. गोत्र कर्म का बंध - गुणानुरागी, मदरहित, पढने पढाने में रुचि रखने वाला उच्चगोत्र बांधता है । विपरीत आचरण वाला नीच गोत्र बांधता है।

8. अंतराय कर्म का बंध - जिनपूजादि में विध्न करने वाला हिंसादि में

रत रहने वाला अंतराय कर्म बांधता है ।

○ जीवादि नवतत्व उपर श्रध्धा करना समकित है । एक बार अंतर्मुहुर्त मात्र समकित का स्पर्श हो जाय तो वह जीवात्मा अर्धपुद्गल परावर्त में अवश्य मोक्ष में जाता है ।

संसारी अवस्था के अनुसार सिध्ध के 15 भेद है ।

1. जिन सिध्ध - तीर्थकर होकर मोक्ष में जाना ।
2. अजिन सिध्ध - सामान्य केवली होकर मोक्ष में जाना ।
3. तीर्थ सिध्ध - शासन स्थापना के बाद तीर्थ का आश्रय लेकर मोक्ष में जाने वाला ।
4. अतीर्थ सिध्ध - तीर्थ स्थापना के पूर्व हो या तीर्थोच्छेद होने पर मोक्ष जाने वाला ।
5. गृहीलिंग सिध्ध - गृहस्थ वेष में सिध्ध होना ।
6. अन्य लिंग सिध्ध - तापसादि वेष में सिध्ध होना ।
7. स्वलिंग सिध्ध - साधु वेष में सिध्ध होना ।
8. स्त्रीलिंग सिध्ध - स्त्रीलिंग में सिध्ध होना ।
9. पुरुष लिंग सिध्ध - पुलिंग में सिध्ध होना
10. नपुंसक लिंग सिध्ध - कृत्रिम नपुंसक रूप में सिध्ध होना
11. प्रत्येक लिंग सिध्ध - मात्र अेक ही निमित्त पाकर वैराग्यवान बनकर सिध्ध होना ।
12. स्वयं बुध्ध सिध्ध - स्वतः वैराग्य पाकर मोक्ष में जाना ।
13. बुध्ध बोधित सिध्ध - गुरु उपदेश से बोध प्राप्त कर मोक्ष जाने वाला ।
14. अेक सिध्ध - अेक समय अेक ही सिध्ध हो वह ।
15. अनेक सिध्ध - अेक समय मे अनेक सिध्ध होना ।

गति आगति द्वार

गति	नारकी	10 भवनपति	पृं.	अपू.	ते.	वा.	व.	वि. कले.	ग. ति.	ग. म.	व्यं-तर	ज्यो-तिष	वेमा-निक	कुल
नारकी									1	1				2
10 भवनपति			1	1			1		1	1				5
पृथ्वीकाय			1	1	1	1	1	3	1	1				10
अप्काय			1	1	1	1	1	3	1	1				10
तेउकाय			1	1	1	1	1	3	1					9
वायुकाय			1	1	1	1	1	3	1					9
वनस्पतिकाय			1	1	1	1	1	3	1	1				10
विकलेन्द्रिय-3			1	1	1	1	1	3	1	1				10
ग. तिर्यञ्च	1	10	1	1	1	1	1	3	1	1	1	1	1	24
ग. मनुष्य	1	10	1	1	1	1	1	3	1	1	1	1	1	24
व्यन्तर			1	1			1		1	1				5
ज्योतिष्			1	1			1		1	1				5
वेमानिक			1	1			1		1	1				5

गति आगति द्वारकी विचारणा

(1) नारकी के जीव -

गर्भज तिर्यञ्च एवं मनुष्य में आते है और उसमें ही उत्पन्न होते है ।

(2) 10 भवनपति - व्यन्तर, ज्योतिष, वैमानिक -

गर्भज तिर्यञ्च मनुष्य में से आते है, और गर्भज तिर्यञ्च, मनुष्य एवं पर्याप्त प्रत्येक वन./अप./ पृथ्वीकाय में गमन करते है ।

(3) पृथ्वी./अप्./वन./विकलेन्द्रिय -

पृथ्वीकायादि 10 दंडक में से अपना रूप धारण करते है, इन दशो को अपना रूप समर्पित करते है।

(4) गर्भज तिर्यञ्च -

सभी दंडक में आवागमन करते है ।

(5) गर्भज मनुष्य -

सभी दंडक में पैदा होते है तथा तेउ./वायु. विना 22 दंडक में से आते है ।

(6) तेउ./वाउ.

पांच स्थावर/तीन विकलेन्द्रिय व गर्भज ति. में उत्पन्न होते है, और मनुष्य सहित उपरोक्त दंडक में से आते है ।

चोवीश दंडक के नाम

○ सात नरक - (1) रत्नप्रभा (2) शर्कराप्रभा (3) वालुकाप्रभा (4) पंकप्रभा (5) धूमप्रभा (6) तम:प्रभा (7) तमतम:प्रभा

(सात नरक का 1 दंडक)

○ दस भवनपति देव - (1) असुरकुमार (2) नागकुमार (3) विद्युत्कुमार (4) सुवर्णकुमार (5) अग्निकुमार (6) द्वीपकुमार (7) उदधिकुमार (8) दिशिकुमार (9) वायुकुमार (10) स्तनितकुमार । (भवनपति के 10 दंडक)

○ अेकेन्द्रिय के पांच दंडक - (1) पृथ्वी काय (2) अप्काय (3) तेउकाय (4) वायुकाय (5) वनस्पतिकाय ।

○ विकलेन्द्रिय के तीन दंडक - बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चइरिन्द्रिय

○ गर्भज तिर्यन्च का 1, गर्भज मनुष्य का 1, 16 व्यन्तरो का 1 और 26 वैमानिक देवोका 1 दंडक, इस प्रकार कुल मिलाकर 24 दंडक हुअे ।

पांच प्रकार के शरीर

1. **औदारिक शरीर** - विशाल, उदारगुण, उत्तम, स्थूल, उंचा शरीर होने से औदारिक कहते है, तीर्थंकर गणधर आदि का यह शरीर होने से इसे विशाल आदि विशेषण दीये गये है ।

2. **वैक्रिय शरीर** - विविध-विचित्र क्रिया इससे होती है, अत: वैक्रिय कहते है ।

3. **आहारक शरीर** - आमर्षौषधि आदि लब्धिमंत चौद पूर्वधर मुनि तीर्थंकर की ऋध्धि देखने व शंका समाधान के लिये आहारक वर्गणा से यह शरीर बनाते है, यह वैक्रिय शरीर से बहोत तेजस्वी एक हाथ का होता है, संसार चक्र में यह चार बार ही बनाया जाता है ।

4. **तैजस शरीर** - तैजस वर्गणा से यह शरीर बनता है । शरीर और जठर में इसके द्वारा गर्मी रहती है । तपस्या विशेष से इसके द्वारा क्रोध से किसी को भस्मसात् किया जा सकता है और अनुग्रह बुद्धि से शीतलता भी प्रदान की जा सकती है ।

5. **कार्मण शरीर** - कार्मण वर्गणा का यह शरीर बनता है, जिससे ग्रहण की गइ कार्मण वर्गणा का आठो कर्मो में विभाजन किया जाता है, नव्य कर्मो का ग्रहण इसके कारण ही होता है । तथा जीव ओज आहार इसके द्वारा लेता है ।

○ जिस शरीरनामकर्म का उदय होता है तब तक उस शरीर योग्य वर्गणा आत्मा ग्रहण करता रहेता है । केवल शरीर कि विद्यमानता शरीर नामकर्म का उदय नही है, जैसे चौद में गुणस्थानक पर शरीर तो होता है, मगर आत्मा औदारिकादि वर्गणा को ग्रहण नहीं करता है ।

दो, तीन, चार, पांच नंबर के शरीर का पर्वतादि से प्रतिघात नहि होता है ।

अवगाहना - शरीर की लंबाई/उचाई

6. संघयण

संघयण -हड्डी का बांधा जो छ प्रकार का है ।

1. वज्रऋषभ नाराच - वज्र - खीला, ऋषभ - पट्टी, नाराच - मर्कटबंध। दोनो तरफ मर्कटबंध के उपर पट्टी वेष्टित करके किलीका लगाना ।
2. ऋषभ नाराच - मर्कटबंध उपर पट्टा लगाना ।
3. नाराच - मर्कटबंध जैसा मजबूत हड्डी का बांधा ।
4. अर्धनाराच - आधे मर्कटबंध जैसी मजबूतीवाला बांधा ।
5. कीलिका - केवल सांधे पर किलीका हो ।
6. सेवार्त - केवल दो हड्डी एक दूसरे से स्पर्श करके रही हो, सेवार्त- सेवा-तेल आदि के मर्दन से मजबूत रहनेवाला संघयण ।

सोल प्रकार की संज्ञा

1. आहार - खाने की इच्छा
2. भय - घबराट
3. मैथुन - विषय सेवन की इच्छा
4. परिग्रहं - संग्रह करने की इच्छा
5. ओघसंज्ञा - 1. पूर्व संस्कार - बालक जन्मते ही स्तन-पान करता है। 2. अन्त र्निहित अर्थ वाला जैसा मोघम ज्ञान 3. सामान्य शब्द-अर्थका भान 4. (दर्शनोपयोग)
6. लोकसंज्ञा - 1. लोक व्यवहार को अनुसरने की वृत्ति - कुत्ता यक्ष है, कूत्ते यम को देखते है, ब्राह्मण देव है, अगस्त्य ऋषि समुद्र पी गये, इत्यादि अनेक लौकिक कल्पना (विचारणा) वह लोकसंज्ञा 2. शब्द अर्थ का विशेष ज्ञान 3. ज्ञानोपयोग

7/8/9/10 - क्रोध, मान, माया, लोभ

11. मोह - ममत्व भाव
12. धर्म - धर्म करने की प्रवृत्ति
13. सुख - आनंद की अनुभूति
14. दु:ख - दु:ख का भाव
15. जुगुप्सा - थुत्कार करना / तिरस्कार वृत्ति
16. शोक - दिलगीरी का भाव

किस कर्म के उदय से

(1) अशातावेदनीय के उदय से, (2) भय मोहनीय के उदय से
(3) वेद मोहनीय के उदय से, (4) लोभ मोहनीय के उदय से
(5,6) मति ज्ञानावरणीय तथा दर्शनावरणीय के क्षयोपशम से।
(7,8,9,10) कषाय मोहनीय के उदय से।
(11) मोहनीय कर्म के उदय से।

(12) मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से । (13) रति मोहनीय के उदय से । (14) अरति मोहनीय के उदय से । (15) जुगुप्सा मोहनीय के उदय से। (16) शोक मोहनीय के उदय से ।

छ प्रकार के संस्थान

संस्थान - सामुद्रिक शास्त्र में जिस तरह प्रमाण बताया है, उस प्रमाण से युक्त या उस प्रमाण से अयुक्त शरीर का आकार।

1. समचतुरस्त्र संस्थान - शरीर के सभी अवयव सामुद्रिक शास्त्र में बताये गये प्रमाण से युक्त हो । जैसे पद्मासन में बेठा हुआ मनुष्य के बाये घुंटन से दाया खंध, दाये घुंटण से बाया खंध, दाये घुंटण से बाया घुंटण, पर्यंकासन के मध्य भागसे नासिका का अग्र भाग समान हो ।

2. न्यग्रोध परिमण्डल - नाभि के उपर के अवयव प्रमाणयुक्त, नाभी के नीचे के अवयव प्रमाण से अयुक्त हो ।

3. सादि - पैर के तलीये से लगाकर नाभि तक अर्थात् शरीर का अधोभाग प्रमाण युक्त हो और उपर का आधा भाग प्रमाण से अयुक्त हो।

4. वामन - मस्तक, ग्रीवा, हाथ और पेर ये चार अवयव प्रमाण युक्त हो और शेष (पीठ-पेट-छाती) प्रमाण से अयुक्त हो ।

5. कुब्ज - मस्तक आदि चार अवयव प्रमाण से अयुक्त हो और पीठ आदि अवयव प्रमाण से युक्त हो ।

6. हुंडक - शरीर के सभी अवयव प्रमाण से अयुक्त हो ।

चार प्रकार के कषाय

कषाय मतलब मलिनता । कर्म बंध का मुख्य कारण कषायरुपी आत्मा की मलिनता है । `कष' संसार `आय' लाभ जिससे संसार का लाभ हो ।

छ प्रकार की लेश्या

जन्मसे जो स्वभाव होता है उसे लेश्या कहते है, जैसे कोई प्राणी शांत हो, कोई उग्र/कडक स्वाभाववाला, कोई दयालु, मंद, उतावला आदि। कषाय के कर्मपुद्गल में सम्मिलित कृष्णादि वर्ण के जो कर्मपुद्गल होते है, उसे द्रव्य लेश्या कहते है। द्रव्य लेश्या के अनुसार उत्पन्न होनेवाले स्वभाव को भाव लेश्या कहते है।

अथवा प्रज्ञापना में औदारिकादि वर्गणा की तरह लेश्या पुद्गल की भी वर्गणा होती है, जो अनंतानंत पुद्गलसे बनती है, प्रत्येक लेश्या के परिणाम व द्रव्य की अपेक्षासे असंख्यात लोकाकाश प्रदेश प्रमाण स्थान होते है, लेश्या के स्वभाव को समझने के लिए जंबु खाने की ईच्छावाले छ पुरुष का उदाहरण बहोत ही उपयोगी है।

जैसे,
1. वृक्ष को मूल से उखाड दीया जाय।
2.-कोई बडी बडी शाखाओं को तोडे।
3. कोई छोटी छोटी शाखओ को तोडे।
4. कोई जंबू के गुच्छो को नीचे डाले।
5. कोई केवल जंबू को ही फेंके।
6. कोई केवल नीचे गिरे हुए जंबू का भक्षण करे।

सयोगी गुण स्थानक की शुभ लेश्या देशोन पूर्व कोटी तक टीकती है, शेष मनुष्य तिर्यञ्च की लेश्या अंतर्मुहूर्त में परिवर्तित होती रहती है, देवता-नारकी के भव में पीछले भव की लेश्या साथ आती है। आगामी भव में अंतर्मुहूर्त तक साथ रहती है, और अपने भव में द्रव्य की अपेक्षा एक ही लेश्या होती है, मगर (परिणाम वश) अन्य लेश्या पुद्गल जुडने पर आकार प्रकार में थोडासा अल्प परिवर्तन होता है। जिससे भिन्न लेश्या का परिणाम देखने में आता है।

इसी के आधार सातमी नारकी का जीव समकित को प्राप्त कर सकता है। और तेजोलेश्यावाले संगम जैसे वैमानिक देवने भी वीरप्रभु को उपसर्ग किया।

इन्द्रिय के प्रकार

छद्मस्थ आत्मा का ज्ञान करने का मुख्य साधन **इन्द्रिय** है ।

○ जिह्वेन्द्रिय : 1. द्रव्य जिह्वेन्द्रिय = (अ) उपकरण जिह्वेन्द्रिय (ब) निवृत्तिजिह्वेन्द्रिय (A) बाह्यनिवृत्तिजिह्वेन्द्रिय (B) अभ्यन्तर निवृत्तिजिह्वेन्द्रिय 2. भाव जिह्वेन्द्रिय = (अ) लब्धि जिह्वेन्द्रिय (ब) उपयोग जिह्वेन्द्रिय

1. बाह्य निवृत्ति जिह्वेन्द्रिय - बहार से देखी जाती जीभ

2. अभ्यतंर निवृत्ति जिह्वेन्द्रिय - जीभ के अंदर रहा हुआ अस्त्रा जैसा आकार ।

3. उपकरण जिह्वेन्द्रिय - बहार के तथा अंदर के आकार में रही हुई तलवार की धार में छेदने की शक्ति समान विषय ग्रहण करने की शक्ति ।

4. लब्धि भाव जिह्वेन्द्रिय - जिह्वेन्द्रिय मतिज्ञानावरणीय कर्मो के क्षयोपशम अनुसार जिह्वेन्द्रिय मतिज्ञान शक्ति ।

5. उपयोग भाव जिह्वेन्द्रिय - जिह्वेन्द्रिय मतिज्ञानावरणीय कर्मो के क्षयोपशम रुप जिह्वेन्द्रिय मतिज्ञान का व्यापार ।

समुद्घात

○ समुद्घात - बलात्कार से आत्म प्रदेशो को बहार निकालकर अधिकतर कर्मो की उदीरणा करके नाश करने का प्रयत्न विशेष ।

1. वेदना समुद्रघात - वेदना से पीडित जीव आत्मप्रदेशो को बहार निकालकर शरीर के रिक्त भागो को आत्मप्रदेशो से भर देता है तथा शरीर की उचाई और जाडाई में आत्मप्रदेशो द्वारा समान प्रमाण का दण्डाकार हो जाता है, उस वक्त उदीरणा करण से अशाता वेदनीय के अधिक कर्म

पुद्गलो को उदय में लाकर नाश करता है, इस प्रसंग को वेदना समुद्घात कहते है ।

2. कषाय समुद्रघात - कषाय से व्याकुल जीव पूर्ववत दण्डाकार बनकर कषाय मोहनीय का नाश करता है । इस प्रसंग को कषाय समुद्घात कहते है । मगर कषाय की प्रबलता के कारण नये कर्म का अधिक बंध करता है।

3. मरण समुद्घात - मृत्यु के समय व्याकुल आत्मा मृत्यु से अंतर्मुहुर्त पूर्व अपने आत्मप्रदेशो को शरीर से बहार निकालकर जहाँ उत्पन्न होने का है वहां तकअंगुल के असंख्यात भाग और उत्कृष्ट से असंख्यात योजन तक फेलता है - अंतमुहूर्त तक ऐसी अवस्था में रहकर जीव मृत्यु को भेटता है । इस प्रसंग को मरण समुद्घात कहते है ।

4. वैक्रिय समुद्घात - वैक्रिय लब्धिवाले आत्मा आत्मप्रदेशो को शरीर बहार निकालकर उत्कृष्ट से संख्यात योजन दीर्घ और स्वदेह प्रमाणमें जाडा दंडाकार बनाकर पूर्वोपार्जित वैक्रिय नाम कर्म के अत्यधिक प्रदेशो को उदीरणा द्वारा उदय में लाकर विनाश करने के साथ, जैसा शरीर बनाने की इच्छा की हो उसके योग्य वैक्रियवर्गणाके पुद्गलो को ग्रहण करके वैक्रिय शरीर बनाता है ।

5. तैजस् समुद्घात - तेजो लेश्या लब्धिमंत आत्मा पूर्ववत दण्डाकार बनाकर पूर्वोपार्जित तैजस नामकर्म के प्रदेशो को प्रबल उदीरणा से नाश करनेके साथमें तैजस् पुद्गलो को ग्रहण करके तेजोलेश्या या शीतलेश्या फेंकता है ।

6. आहारक समुद्घात - यहां पर आहारक लब्धिमंत वैक्रिय समुद्घात की तरह आहारक शरीर बनाता है ।

7. केवलिसमुद्घात - केवली भगवंत नाम गोत्र वेदनीय की स्थिति को समान करने के लिए आत्मप्रदेशो को बहार निकालकर चौद रज्जु लम्बा स्वदेह प्रमाण जाडा दंडाकार प्रथम समये में बनाते है, दूसरे समय उत्तर-दक्षिण या पूर्व-पश्चिम कपाट बनाते है । तीसरे समय उत्तर-दक्षिण / पूर्व-पश्चिम कपाट बनाते है । चोथे समये बीच का अंतर पूरते है, उस समय

आत्मप्रदेश पूरे लोक में फैल जाते है, पांचमे समये - आंतरो का संहार, छठे समय - एक कपाट का, सातमे समय दूसरे कपाट का संहार, आठमे समय - दण्ड का संहरण करके देहस्थ हो जाता है, इसका काल आठ समय है, शेष का अंतर्मुहूर्त काल है।

तीन दृष्टि

हर व्यक्ति भिन्न भिन्न नजर से पदार्थों को देखता है, उसे दृष्टि कहते है।

1. मिथ्यादृष्टि - आध्यात्मिक क्षेत्र में विवेक विकल आत्मा, जो सर्वज्ञ वचन उपर आस्था नहिं रखता है।

2. सम्यग्दृष्टि - जो सर्वज्ञ वचन उपर पूर्ण आस्था रखता है।

3. मिश्रदृष्टि - सर्वज्ञ वचन उपर रुचि और अरुचि का अभाव रखना।

चार प्रकार के दर्शन

निराकार सामान्य उपयोग दर्शन है।

1. चक्षु से रूप में रहे सामान्य धर्म को जानने की शक्ति - चक्षुदर्शन

2. शेष इन्द्रिय तथा मन से रसादि के सामान्य धर्म को जानने की शक्ति - अचक्षुदर्शन।

3. अवधिज्ञान से ज्ञेय पदार्श के सामान्य धर्मको जानने की शक्ति - अवधिदर्शन।

4. सकल पदार्थ के सामान्य धर्म को जानने कि शक्ति - केवलदर्शन।

o दर्शन में जाति आदि के उल्लेख का अभाव होने से विपरित दर्शन कासंभव नहि है।

पांच प्रकार के ज्ञान

1. मतिज्ञान - मन एवं इन्द्रिय के निमित्त से विषयो में निष्ठ विशेष धर्म जानने की जो ज्ञानशक्ति उत्पन्न होती है वो मतिज्ञान ।

2. श्रुतज्ञान - शब्द उपर से अर्थ का व अर्थ उपर से शब्द का संबंध जानने की जो ज्ञानशक्ति मन एवं इन्द्रिय के निमित्त से जागृत होती है, वो ज्ञानशक्ति श्रुतज्ञान ।

3. अवधिज्ञान - रुपी पदार्थ में रहे हुए विशेष धर्म को जानने के लिए इन्द्रियादि के निमित्त बिना साक्षात् आत्मा से जो ज्ञान शक्ति उत्पन्न होती है वो ज्ञानशक्ति अवधिज्ञान । अंसं. /उत्स. / अवसर्पिणी का ज्ञान हो सकता है ।

4. मन:पर्यवज्ञान - साक्षात् आत्मा से ढाईद्वीप में रहे हुए संज्ञि जीवो के मनोगत भाव जानने के लिए जागृत होती ज्ञानशक्ति वो मन:पर्यवज्ञान। उत्कृष्ट से अंसंख्य उत्सर्पिणी अवसर्पिणी भावी का ज्ञान होता है ।

5. केवलज्ञान - आत्म से साक्षात् सर्व पदार्थो में रहे हुए विशेष धर्मो के समस्त ज्ञान को करनेकी शक्ति को केवलज्ञान कहते ।

तीन प्रकार के अज्ञान

अज्ञान का मतलब ज्ञान का अभाव एसा अर्थ नहि करना, लेकिन यहां अ याने कुत्सित - निंद्य - खराब अर्थ है । अर्थात विपरीत ज्ञान ।

1. मति अज्ञान - विपरीत मतिज्ञान को मतिअज्ञान कहते है ।

2. श्रुत अज्ञान - विपरीत श्रुतज्ञान को श्रुत अज्ञान कहते है ।

3. विभंग ज्ञान - विपरीत अवधिज्ञान को विभंग ज्ञान ।

वि - विरुध्ध भंग - ज्ञान जिस में हो वह विभंग ज्ञान ।

''योग''

योग आत्मप्रदेशो का आंदोलन हलन - चलन लेकिन वह पुद्‌गल के सबंध से ही होता है ।

1. मनोयोग - काययोगसे आत्मा मनोवर्गणा को ग्रहण करके उसे मन रुप में परिणत करके चिंतन करता हुआ आत्मा उस वर्गणा को छोड देता है, उसे मनोयोग कहते है ।

2. वचनयोग - उसी प्रकार भाषा वर्गणा ग्रहण कर उसे वचन रुप में परिणत करके आत्मा बोलता हुआ उस वर्गणा को छोडता है ।

3. काययोग - औदारिक आदि शरीर वर्गणा से निर्मित शरीर द्वारा प्रवृत्ति करना वो काययोग है ।

(1) सत्यमनोयोग - यथावस्थित गुण स्वभाव का विचार करना।

(2) असत्यमनोयोग - सत्य से विरूद्ध विचार करना ।

(3) मिश्र मनोयोग - थोडा सत्य और थोडा असत्य विचार करते समय मिश्र मनोयोग होता है ।

4. असत्यअमृषा - जिस विचार को व्यवहार दृष्टि से सत्य या असत्य भी न कहा जा शके । जैसे आओ, बेठो इत्यादि विचार तथा पशु आदि का अस्पष्ट विचार ।

वचनयोग के इसी प्रकार चार भेद है ।

'काययोग' सात प्रकार के है ।

1. औदारिक काययोग - औदारिक शरीर से होनेवाली क्रिया के समय आत्मा में जो व्यापार होता है, वह औदारिक काययोग ।

2. औदारिक मिश्र काययोग - कार्मण शरीर एवं औदारिक शरीर अथवा औदारिक शरीव एवं वैक्रिय अथवा आहारक शरीर के मिश्रणवाले शरीर की चेष्टा के समय आत्मा में प्रवृत्त होता व्यापार ।

3. वैक्रिय काययोग - वैक्रिय शरीर की गमनादि क्रिया के समय आत्मा में प्रवृत्त होता व्यापार ।

4. वैक्रिय मिश्र काययोग - वैक्रिय शरीर एवं कार्मण शरीर के तथा वैक्रिय शरीर एवं औदारिक शरीर के मिश्रणवाले शरीर की गमनादि क्रिया के समय आत्मा में प्रवृत्त होता व्यापार ।

5. आहारक काययोग - आहारक शरीर की गमनादि क्रिया के समय आत्मा में प्रवृत होता व्यापार ।

6. आहारक मिश्र काययोग - औदारिक शरीर एवं आहारक शरीर के मिश्रण समय आत्मा में प्रवृत होता व्यापार ।

7. कार्मण काययोग - केवल कार्मण एवं तैजस दो ही शरीर हो तब उनमें प्रवृत होने वाला व्यापार ।

12 प्रकार के उपयोग

1. साकारोपयोग - पांच प्रकार की ज्ञानशक्ति एवं तीन प्रकार की अज्ञान शक्ति का प्रयोग इस तरह 8 प्रकार का साकारोपयोग है ।

2. निराकारोपयोग - चार प्रकार की दर्शन शक्ति का प्रयोग वह निराकारपयोग ।

उपपात

किस दंडक में अेक समय में कितने जीव उत्पन्न होते है, वह उपपात द्वार तथा उसमें विरह कितना होता है ।

च्यवन

किस दंडकमेंसे एक समय में कितने मरते है, उसमें विरह कितना होता है, वह बताया जायेगा ।

स्थिति, आयुष्य व पर्याप्ति का उल्लेख पूर्व में हो गया है ।

किमाहार

दंडक के जीवो को कितनी दिशा का आहार होता है उसका विचार। पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, उर्ध्व एवं अधो ये छ दिशा है।
उर्ध्वलोक की अंतिम प्रतर के कोणेमें रहे हुए जीव को आसपास के दो ओर एक नीचे की तरफका आहार होता है, क्योंकि शेष दिशा में अलोक होने से आहार मिलना अशक्य है, अेक प्रदेश नीचे रहने वाले को चार दिशा का आहार होता है और उसके पास में रहे हुए जीव को पांच दिशा का आहार होता है, शेष को छ दिशा का आहार होता है।

तीन प्रकार की संज्ञा

1. हेतुवादोपदेशिकी - जिसमें केवल वर्तमान का ही विचार हो, जैसे कीडी (चिट्टी) केवल सुंघने का ध्यान देती है, लेकिन इसमें पहली भी मर गई में भी मर जाऊंगी इत्यादि भूत भावी का जिसमें विचार न हो। असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक 13 भेदो में मात्र यह संज्ञा ही होती है।
2. दीर्घकालिकी संज्ञा - केवल संज्ञी पंचेन्द्रिय जिसने मनंपर्याप्ति पूर्ण की होती है, उसको यह संज्ञा होती है, इसके द्वारा त्रिकाल के सुख - दुःख के हेतु आदि का जीव विचार कर सकता है।
3. द्रष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा - सम्यक्त्व संबंधि वाद - कथन उसके उपदेश / अपेक्षावाली यह संज्ञा होती है, अर्थात् जो समकिती जीवात्मा ज्ञानावरणीय के क्षयोपशम वाला यथाशक्ति योग्य आचरण करने वाला हो, एसे छद्मस्थ को यह संज्ञा होती है।

दीर्घकालिकी संज्ञा के आधार से जीव के संज्ञी और असंज्ञी भेद पडते है।

गति

कौनसे दंडक का जीव मरके कौनसे दंडक में उत्पन्न होता है, उसका उल्लेख इस द्वार में किया जायेगा

आगति

.किस दंडक में कोन कोनसे दंडक के जीव आते है, उसका विचार।

तीन प्रकार के वेद

1. स्त्रीवेद - पुरुष के साथ विषय क्रीडा करने का अभिलाष ।

2. पुरुषवेद - स्त्री के साथ विषय क्रीडा करने का अभिलाष ।

3. नपुंसक - स्त्री - पुरुष उभय के साथ विषय क्रीडा करने का अभिलाष ।

अल्पबहुत्व

किस दंडक के जीव किस दंडक के जीव से हीनाधिक है, उसका विचार ।

चोवीश दंडक में चोवीश द्वार की घटना

चोवीश दंडक में पांच शरीर

औदा - औदारिक, वै- वैक्रिय, तै - तैजस, का - कार्मण, आहा - आहारक

1 पृथ्वीकाय -	औदारिक तैजस-कार्मण	1 नारक -	वै. तै. का.
1 अप्काय	,,	10 असुरादि	,,
1 तेउकाय	,,	1 व्यतंर	,,
1 वनस्पतिकाय	,,	1 ज्योतिष	,,
1 बेइन्द्रिय	,,	1 वैमानिक	,,
1 तेइन्द्रिय	,,	1 मनुष्य	औदा. वै. आहा. ते. का.

1 चउरिन्द्रिय ,,

1 वायुकाय औदा.वै.ते.का.

1 पं.तिर्यन्च ,,

वायुकाय को भी वैक्रिय लब्धि होती, लेकिन उसका प्रयोग तो अनाभोग से ही होता है। देवादि मनमाना शरीर बना सकते है, नारक जीव अपनी इच्छा / उपयोग पूर्वक उत्तर वैक्रिय शरीर बनाते है, लेकिन भव स्वभाव से वह भी कुरूपा ही बनता है।

पृथ्वीकायादि के शरीर का प्रमाण

सूक्ष्म वनस्पति का सबसे छोटा
उससे सूक्ष्म वायुकाय का असंख्य गुण (बडा)
उससे सूक्ष्म अग्नि का असंख्य गुण (बडा)
उससे सूक्ष्म जल का असंख्य गुण (बडा)
उससे सूक्ष्म पृथ्वी का असंख्य गुण (बडा)
उससे बादर वायुकाय का असंख्य गुण (बडा)
उससे बादर अग्निकाय का असंख्य गुण (बडा
उससे बादर जल का असंख्य गुण (बडा)
उससे बादर पृथ्वी का असंख्य गुण (बडा)
उससे बादर निगोद का असंख्य गुण (बडा)
उससे बादर प्रत्येक वनस्पति का असंख्य गुण (बडा)
(1000 योजन से अधिक)

सर्व जीवो का स्वाभाविक शरीर उत्पत्ति के समय अंगुल के असंख्य भाग जितना होता है (क्योंकि जीव आत्मप्रदेशो का संकोच करके ही मरता है) फिर कोयले में जैसे अग्नि का कण फेलता है, उसी प्रकार वृध्धि को प्राप्त करता है।

चोवीश दंडक में भवस्थ शरीर की अवगाहना

4 पृथ्वीकायादि की	जघन्य.अव. अंगुल का असं. भाग	उत्कृष्ट अव. अंगुल का असं. भाग
1 नारक	,,	500 धनुष
13 देव	,,	सात हाथ
1 ग. तिर्यन्च	,,	1000 योजन
1 वनस्पति	,,	1000 योजनसे अधिक
2 मनुष्य, तेइन्द्रिय	,,	तीन कोश
1 बेइन्द्रिय	,,	12 योजन
1 चउरिन्द्रिय	,,	1 योजन

○ तेइन्द्रियादि की उत्कृष्ट अवगाहना ढाई द्वीप के बहार पाई जाती है । अंतर्मुहूर्त आयुष्य वाला आसालिक नाम का प्राणी उत्पन्न होते ही 12 जोजन का बन जाता है, शीघ्र मरने के बाद वह इतना बडा खड्डा बना देता है कि चक्री सैन्य उसमे डुब जाता है, वह बेइन्दिय जीव होता है (अन्य मत में उसे उरपरिसर्प पंचेन्द्रिय बताया है) अर्थात् इसका ढाई द्वीप में भी संभव है ।

○ गर्भज तिर्यञ्च हजार योजन के होते है, वे **स्वयंभूरमण** नामके अंतिम समुद्र में होते है ।

○ सभी का उत्तरवैक्रिय शरीर प्रारंभमें अंगुलका संख्यातवां भाग ही होता है, और उत्कृष्टसे देवका लाख जोजन, मनुष्यका लाख जोजन से चार अंगुल अधिक होता है, शिर पर दोनो समान है लेकिन देव भूमिसे चार अंगुल उपर रहते है और मनुष्य भूमि को छूके रहते है । तिर्यन्च का 900 योजनं, नारक का अपने भव से दुगुणा, वायुकाय का तो अंगुल का असंख्यात वाँ भाग ही होता है । नारकने बनाया हुआ उत्तरवैक्रिय अंतर्मुहूर्त तक रहता है, मनुष्य और तिर्यन्च ने बनाया हुआ वैक्रिय शरीर चार मुहूर्त तक टीकता है । (जीवाभिगम, भगवती में अंतर्मुहुर्त कहा है) देव

का बनाया हुआ उत्तरवैक्रिय शरीर 15 दिन तक रहता है

○ नये शरीर के साथ आत्मप्रदेशकी श्रेणी बनती है, और नया शरीर विलय होने पर आत्मप्रदेश पूराने शरीर में मिल जाते है। जैसे इन्द्र उपरसे यहां आता है, तो इतनी लंबी श्रेणी बनती है।

○ आहारक की जघन्य अवगाहना प्रारंभ में न्यून अेक हाथ होती है और उत्कृष्टसे अेक हाथ, यह अंतर्मुहूर्त रहेता है, भवचक्रमें चार बार यह शरीर बना सकते है।

तैजस, कार्मण शरीर जघन्य अवगाहना अंगुलका असंख्य भाग और उत्कृष्ट सम्पूर्ण लोक प्रमाण होती है (केवलि समुद्घातके समयं दोनो शरीर पूरे लोकमें प्रसर जाते है।

चोवीश दंडकमें छ संघयण

5 स्थावर	- हड्डी का अभाव होनेसे संघयण रहित	विकलेन्द्रिय	- छेवट्ठु
13 देवदंडक -	''	1 ग. मनुष्य -	छ संघयण
1 नारक -	''	1 ग. तिर्यन्च -	''

○ सभी को चार या दश संज्ञा होती है।

चोवीश दंडकमें छ संस्थान

○ देवो का उत्तरवैक्रिय संस्थान तो सिध्धांतमें अनेक तरह का बताया है।

○ नारकोका हुंडक संस्थान उखडे हुए पंखवाले पक्षी जैसा भयंकर होता है।

13 देवदंडक - समचतुरस्त्र	3 विकलेन्द्रिय - हुंडक
1 ग. मनुष्य - छ संस्थान	1 नारक - हुंडक
1 ग. तिर्यन्च - छ संस्थान	5 स्थावर - हुंडक

○ सभी को चार कषाय होते है।

○ इन्द्रिय द्वार सुगम है।

अेकेन्द्रिय जीवोके हुंडक संस्थान

प्रत्येक वनस्पतिकायका - तरह तरह के अनेक आकार

वायुकाय का - ध्वज के आकार का

तेउकाय का - सुई के आकार का

अप्काय का - परपोटा के आकार का

पृथ्वीकाय का - मसुरकी दाल अथवा अर्धचंद्र आकार का

○ प्रत्येक वनस्पतिकायको छोडके दूसरे किसीका अेक शरीर देखा नहि जा शकता, इसलिए उसके संस्थान भी देखे नहि जाते है।

चोवीश दंडकमें छ लेश्या

1 ग. तिर्यन्च को - छ लेश्या

1 ग. मनुष्य को - छ लेश्या

1 नारक को - तीन अशुभ

1 अग्निकाय को ''

1 वायुकाय को ''

1 वायुकाय को - तीन अशुभ

3 विकलेन्द्रिय को - 3 अशुभ

1 वैमानिक को - 3 शुभलेश्या

1 ज्योतिष को - 1 तेजोलेश्या

14 शेष दंडक को - प्रथम की चार

चोवीश दंडक में सात समुद्घात

1 गभर्ज मनुष्. को - सात समद्घात

1 ग. तिर्यन्च को - वे. क. म. वैकि. तै.

13 देव दंडक में - वे. क. म. वैकि. तै.

1 नारक को - वे. क. म. वैक्रि.

1 वायु काय को - वे. क. म. वैक्रि.

7 शेष दंडक में - वे क. म.

○ त्रसनाडीके बहार निराबाध स्थानमें रहे हुए सूक्ष्मादि अेकेन्द्रियको

तथाप्रकारके उपघातका अभाव होनेसे वेदना समुद्घात बिना दो समुद्घात होते हे ।

चोवीश दंडक में तीन द्रष्टि

3 विकलेन्दिय में - मिथ्या, सास्वादन. 2, 5 स्थावर में - मिथ्या 1
16 शेष दंडक में - तीनद्रष्टि ।

चोवीश दंडक में चार दर्शन

5 स्थावर को - अचक्षु दर्शन
1 द्वीन्द्रिय को - ''
1 तेइन्द्रिय को - ''
1 चउरिन्द्रिय को - चक्षु, अचक्षु
1 ग. मनुष्य को - चार दर्शन
15 शेष दंडक में केवल दर्शन बिना तीन दर्शन ।

चोवीश दंडक में पांच ज्ञान तीन अज्ञान

13 देवदंडक में - 3 ज्ञान, 3 अज्ञान
1 ग. तिर्यन्च में - '' ''
1 नारक में - '' ''
5 स्थावर में - दो अज्ञान
3 विकलेन्द्रिय में - दो ज्ञान, दो अज्ञान
1 ग. मनुष्य में - पांच ज्ञान, 3 अज्ञान

○ मिथ्यात्वी को अज्ञान व समकिती को ज्ञान होता है ।

○ पृथ्वी, अप् व वनस्पति इन 3 दंडकमें भी सास्वादनकी अपेक्षासे 2 ज्ञान भी किसी जगह प्रवचनमें माने गये है ।

चोवीश दंडक में 15 योग

13 देवदंडक में - 11/ औ., औ. मि., आ., आ. मि. अलावा
1 नारक में - 11 / औ., औ. मि., आ., आ मि. बिना
1 ग. तिर्यन्च में - 13/ आ., आ. मि. बिना
1 ग. मनुष्य में - 15
तीन विकलेन्द्रियमें - 4 औ., औ. मि., तै. का., असत्यअमृपा वचन
1 वायुकाय में - 5 औ., औ. मि., वै., वै. मि., का. ।
4 स्थावर में - 3 औ., औ. मि., तै. का. ।

चोवीश दंडक में 12 उपयोग

1 ग. मनुष्य में -	12	1 बेइन्द्रिय में -	5
1 नारक में -	9	1 तेइन्द्रिय में -	5
1 ग. तिर्यन्च में -	9	1 चउरिन्द्रिय में -	6
13 देवदंडक में -	9	5 स्थावर में -	3

○ 78228162, 5142642, 3759354, 3950336 ये 29 अंक वाली संख्या गर्भज मनुष्य की है ।

असंज्ञी मनुष्य (सम्मूच्छिम मनुष्य) जो मनुष्य के अपवित्र 14 स्थान में (मल मूत्रादि में) उत्पन्न होते है वो संपूर्ण जगत में अंसख्यात होते है । इस लिए अेक समय में उनकी उत्पत्ति असंख्य जितनी है और ये सम्मूच्छिम मनुष्य कितनी / कई बार तो 24 मुहूर्त तक बिल्कुल होते भी नहि है ।

चोवीश दंडक में अेकसाथ उपपात च्यवन की संख्या

1 ग. तिर्यञ्च - संख्यात, असंख्यात	1 ग. मनुष्य - संख्यात
3 विकलेन्दिय - ” ”	1 वनस्पति - अनन्त
13 देव दंडक में - ” ”	4 स्थावर - असंख्य

○ सभी का जघन्य काल - 1 समय है ।

प्रसंगत विरह द्वार

7 नारक रूप 1 दंडक में सामान्य से 12 मुहूर्त । और हर नरक पृथ्वी में विचार करे तो प्रथम नरक पृथ्वी में 24 मुहूर्त

दूसरी नरक पृथ्वी में - 7 दिन

तीसरी नरक पृथ्वी में - 15 दिन

चोथी नरक पृथ्वी में - 1 महीना

पांचमी नरक पृथ्वी में - दो महीना

छठी नरक पृथ्वी में - चार महीना

सातवी नरक पृथ्वी में - छ महीना

○ चार निकाय के देवो में सामान्य से - 12 मुहुर्त और भिन्न भिन्न विचारे तो 10 भवनपति में, व्यन्तर में, ज्योतिष में, 24 मुहुर्त का विरह है और वैमानिक देवो में सामान्य से 24 मुहूर्त का विरह है ।

1-2 देवलोक में - चोवीश मुहूर्त

तीसरे देवलोक में - 9 दिन 20 मुहूर्त

चोथे देवलोक में - 12 दिन 10 मुहूर्त

पांचमें देवलोक में - 22.1/2 दिन

छठे देवलोक में - 45 दिन

सातमे देवलोक में - 80 दिन

आठमे देवलोक में - 100 दिन

नवमे देवलोक में - 10 महीना

दशमे देवलोक में - अग्यार महीना

अग्यारमें बारमें देवलोक में - 100 वर्ष प्रायः

प्रथम तीन ग्रैवेयक में - 1000 वर्ष के अंदर

दूसरे तीन ग्रैवेयक में - लाख वर्ष के अंदर

तीसरे तीन ग्रैवेयक में - क्रोड वर्ष के अंदर

चार अनुत्तर में - पल्योपम का असंख्यातवां भाग

सर्वार्थ में - पल्योपम का संख्यातवां भाग

○ सभी जगह जघन्य विरह काल - अेक समय

ग. तिर्यन्च में - 12 मुहूर्त, 3 विकलेन्द्रिय में - सभी में अेक मुहूर्त

ग. मनुष्य में - 12 मुहूर्त, 5 अेकेन्द्रिय में - विरह काल नहि है ।

○ पांच एकेन्द्रिय बिना जघन्य विरह 1 समय है ।

○ बादर पर्याप्त अप्काय, बादर पर्याप्त वायुकाय और पर्याप्त प्रत्येक वनस्पति का क्रमसर 7000, 3000, 10,000 वर्ष का आयुष्य है, ये भी उसी प्रकार के निराबाध स्थान में रहे हुए स्थिर अप्कायादि का जानना।

जैसे, सुवर्ण का - 1000 वर्ष	मणसिल का - 16,000 वर्ष
खडी का - 12,000 वर्ष	कंकरे का - 18,000 वर्ष
मिट्टी का - 14,000 वर्ष	रत्नमणि का - 22,000 वर्ष

○ ये आयुष्य निराबाध स्थान में रहे हुए सुवर्ण आदि का कहा है ।

प्रश्न - पर्वत एवं पृथ्वी अनेक क्रोड वर्षो से है, नदी एवं समुद्र अनेक क्रोड वर्षो से है, तो फिर पृथ्वीकाय एवं अप्काय का 22,000 तथा 7,000 वर्ष का आयुष्य क्यो ? केसे ?

उतर - यह तो उस पिंड मे से पृथ्वीकायादि अेकएक जीव का ही आयुष्य कहलाता है । उसी कारण से द्वारिका नगरी की आग छ महीने तक रही थी वो भी अनेकबार अनेक अग्निकाय जीव के जन्म-मरण के प्रवाह से रही थी । इसलीये अग्निकाय के एक जीव का आयुष्य श्री सर्वज्ञने तीन दिन का कहा है ।

।। चोवीश दंडक में उत्कृष्ट आयुष्य स्थिति ।।

1. पृथ्वीकाय का - 22,000 वर्ष	1. नारक का - तेत्तीस सागरोपम
1. अप्काय का - 7,000 वर्ष	1. व्यन्तर का - एक पल्योपम
1. वायुकाय का - 3,000 वर्ष	1. ज्योतिष् का - एक पल्योपम और एक लाख वर्ष

1. वनस्पतिकाय का - 10,000 वर्ष
1. अग्निकाय का - तीन दिन
1. ग. मनुष्य का - तीन पल्योपम
1. ग. तिर्यञ्च का - तीन पल्योपम
1. वेमानिक देवका - 33 सागरोपम
1. असुरकुमार का - साधिक एक सागरोपम
9. भवनपति का - देशोन एक पल्यो.
1. बेन्द्रिय का - बारह वर्ष
1. तेइन्द्रिय का - 49 दिन
1. चउरिन्द्रिय का - छ महिना

।। चोवीश दंडक में जघन्य आयुष्य ।।

10. पृथ्वीकायादि का - अन्तर्मुहूर्त
10. भवनपति का - 10,000 वर्ष
1. नारक का - 10,000 वर्ष
1. व्यन्तर का - 10,000 वर्ष
1. वेमानिक का - 1 पल्योपम
1. ज्योतिष का - 1 पल्योपम

।। चोवीश दंडक में छ पर्याप्ति ।।

13 देवदंडक में - छ पर्याप्ति
1 ग. मनुष्य को - छ पर्याप्ति
1 ग. तिर्यञ्च को - छ पर्याप्ति
1 नारक को - छ पर्याप्ति
पांच स्थावर को - चार
तीन विकलेन्द्रिय को - पांच

○ लोक के पर्यन्त भाग में बादर वायुकाय बिना दूसरे बादर एके. न होने से उधर केवल बादर वायुकाय कहा है । कारण कि ऐकन्द्रिय के 22 भेद में से लोक के पर्यन्त में 12 जीवभेद है। पांच बादर पर्याप्ता, पांच बादर अपर्याप्ता ये 10 भेद नहि है ।

''चोवीश दंडक में छ दिशि का आहार''

19 देवादिदंडक में - छ दिशि का
5 स्थावर में 3-4-5-6 दिशि का।

चोवीश दंडक में तीन संज्ञा

13 देवदंडक में - दीर्घकालिकी सं.

1 ग. तिर्यञ्च में - दीर्घकालिकी सं.

1 नारक में - दीर्घकालिकी सं.

5 स्थावर में - संज्ञा का अभाव

3 विकलेन्द्रिय-हेतुवादोपदेशिकी

1 ग. मनुष्य में - दीर्घकालिकी, दृष्टिवादोपदेशिकी ।

○ तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय को भी सम्यग्दृष्टि एवं देशविरति चारित्र (रुप हेयोपादेयता) होने से दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा होती है । लेकिन वो कम होने से शास्त्र में नहि बतायी है । केवल सम्यग्दृष्टिता की अपेक्षा से देवादिक चारो गतिवाले को दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा होती है, लेकिन विशिष्ट श्रुतज्ञान तथा हेयोपादेय के अभावसे इस संज्ञा की मुख्यता बतायी नहिं ।

○ अपर्याप्त युगलिक मनुष्य का मृत्यु नही होता है इसलीये गति का स्थान शून्य है और युगलिक मनुष्य के संबंध में लब्धि अपर्याप्तता नहि है, अर्थात् वे लब्धि पर्याप्ता ही होते है, इसलिये उसकी आगति भी नही है।
- युगलिक चतुष्पद की स्थिति युगलिक मनुष्य समान होती है, इसलिए स्थिति अनुसार दूसरे स्वर्ग तक उत्पति है । खेचर की स्थिति - पल्योपम असंख्यात भाग की होने से भवनपति / व्यन्तर में ही उनकी उत्पत्ति है। उरपरिसर्प - भुजपरिसर्प, जलचर युगलिक नहि होते है, युगलिक अपने आयु के समान स्थितिवाले देव में या हीन स्थितिवाले देव में उत्पन्न हो सकते है ।

संख्यात आयुवाले पर्याप्ता गर्भज मनुष्य, गर्भज, तथा समूर्च्छिम तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय युगलिक में उत्पन्न होते है ।

चोवीश दंडक में तीन वेद

1. ग. तिर्यञ्च में - तीन वेद	13 - देवदंडक में (स्त्री. पु.)
1. ग. मनुष्य में - तीन वेद	9 - शेष दंडक में (नपुंसक)

सम्मूर्च्छिम तिर्यञ्च पञ्चे. एवं सम्मूर्च्छिम मनुष्य में चोवीश द्वार

1. शरीर - सभी को औदा. तैजस, कार्मण तीन शरीर होते है।

2. अवगाहना - सभी सम्मूर्च्छिमो की जघन्य अवगाहना अंगुल का असंख्यातवां भाग है और उत्कृष्ट अवगाहना -

जलचर की - 1000 योजन, उरपरिसर्प की - योजनपृथकत्व

चतुष्पद की - गाउ पृथक्त्व, भुजपरिसर्प की - धनुष पृथक्त्व

खेचर की - धनुष पृथक्त्व, समूर्च्छिम मनुष्य की - अंगुल का असंख्यातवाँ भाग

10. द्रष्टि - मिथ्याद्रष्टि और सम्यग्द्रष्टि ये दो द्रष्टि सम्मू. पं. को होती है। कितने सम्मू. ति. पं. को अपर्याप्त अवस्थामें सास्वादन का सद्भाव होने से सम्यग्दृष्टि माने जाते है। लेकिन पर्याप्त अवस्था में तो मिथ्यादृष्टि हि होते है। स. मनु: तो दोनो अवस्था में मिथ्यादृष्टि ही होते है।

18. स्थिति - सम्मू. जलचर का आयुष्य - अेक पूर्व क्रोड वर्ष

चतुष्पद का - 84,000 वर्ष, उरपरिसर्प का 53,000 वर्ष, भुजपरिसर्प का - 42,000 वर्ष, खेतचर का - 72,000 वर्ष उत्कृष्ट आयुष्य है। सभी का जघन्य आयुष्य - अन्तर्मुहूर्त है, समू. मनुष्य का जघन्य एवं उत्कुष्ट आयुष्य - अन्तर्मुहूर्त है।

19. पर्याप्ति - सभी को मन: पर्याप्ति बिना पांच पर्याप्ति है, परंतु फर्क इतना है कि सम्मू. ति. पन्चे. जीव पांचो पर्याप्ति पूर्ण कर सकते है। और सम्मू. मनुष्य पांचो पर्याप्ति पूर्ण किये बिना ही मृत्यु को प्राप्त करते है।

21. संज्ञा - सभी को हेतुवादोपदेशिकी संज्ञा होती है।

22. गति - सम्मूंति. पं. चारो गति में उत्कृष्ट से पल्योपम के असंख्यातवें भाग के आयुष्य सहित उत्पन्न होते है । वहां नरक गति में प्रथम रत्नप्रभा पृथ्वी के चोथे प्रतर तक जाते है, देवगति में - भवनपति एवं व्यन्तर में उत्पन्न होते है, वो भी पल्योपम के असं. भाग वाले आयुष्य में तथा मनुष्यगति में उत्कृष्ट से अकर्मभूमि का युगलिक बनता है और कर्म भूमि में संख्यात वर्ष के आयु वाला बनता है । यदि तिर्यञ्चगति में जाय तो अकर्म भूमि का तिर्यञ्च बनता है ओर अेकेन्द्रियादि आठ पदमें, असंज्ञि तिर्यञ्च में एवं सम्मू. मनुष्य में भी उत्पन्न होते है, इसलिये गति ज्योतिष, वैमानिक ये दो दंडक छोडकर शेष 22. दंडक में है ।

तथा सम्मू. मनुष्य तो देवगति - नरकगति में उत्पन्न नहि होते है । तिर्यञ्च तथा मनुष्य में उत्पन्न होते है, तो युगलिक मनुष्य युगलिकत्ति. बिना सभी भेद में उत्पन्न होते है इसलिये गति अेके. आदि 10. दंडक में है ।

23. आगति - पांचो प्रकार के सम्मू. ति. पञ्चेन्द्रिय में अेके. आदि 10 पद उत्पन्न होते है और संमू. मनुष्य में अग्नि एवं वायु ये दो पद रहित आठ पद है ।

24. वेद - सभी को नपुंसक वेद होता है, लेकिन लिंग से विचारे तो सम्मू. ति. पंचे.को तीनो लिंग होते है और सम्मू. मनु. नपुंसक लिंग वाले ही होते है ।

25. अल्पबहुत्व - सम्मू. मनु. गर्भज मनुष्य से असंख्य गुण सम्मू. ति. पंचे. का अल्पबहुत्व गर्भज ति. पंचे. समान जानना ।

अल्पबहुत्व

○ पर्याप्त मनुष्य से (पर्या) बादर अग्निकाय, वैमानिक देव, भवनपति, नारक, व्यन्तर देव, ज्योतिष् देव, चउरिन्द्रिय ये सभी पूर्व की संख्या से असंख्य गुण है । उससे

○ पं. ति., बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, पृथ्वीकाय, अप्काय ये सभी जीव पूर्व

पूर्व की संख्या से विशेषाधिक है । उससे
○ वायु काय असंख्यगुण और वनस्पतिकाय अनन्तगुण । हे परमात्मा! ये सभी भावो को मैंने अनंतीबार प्राप्त किये है । अब हमे क्षायिकभावो में स्थिर करे ।

श्री लघु संग्रहणी

असंख्य द्वीप समुद्र के बीचमें रहे हुअे इस द्वीप में जम्बूवृक्ष के आकार का पृथ्वीकायमय शाश्वत स्थिर अकृत्रिम महाजम्बू वृक्ष है । उसके आसपास (12050120) दूसरे शाश्वते वृक्षो से बना हुआ जम्बूवन है और इस द्वीप का अधिष्ठाता अनादृत देव जो जम्बूवृक्ष के उपर रहता है इसलिऐ इस द्वीप का नाम जम्बूद्वीप है ।

○ जम्बूद्वीप की लम्बाई और चौडाई - अेक लाख योजन
○ जम्बूद्वीप की परिधि - 316227 योजन, 3 कोश, 128 धनुष्, 13 अंगुल
○ जम्बूद्वीप का क्षेत्रफल - 7905694150 योजन, अेककोश, 1515 धनुष, 60 अंगुल,

सात - वासक्षेत्र और वर्षधरपर्वत

वासक्षेत्र	आकार	स्पर्श	प्रमाण
1. भरत	अर्ध चंद्राकार	तीनों तरफ लवणसमुद्र है	526 6/19
लघुहिमवंत प.	चौपाई-पलंग जैसा लंबाचौडा	पूर्वपश्चिम लवणसमुद्र है	1052 12/19
2. हिमवंत क्षे.	''	``	2105 5/19
(महाहिमवंत प.)	''	''	4210 10/19
3. हरिवर्ष क्षे.	''	''	8421 1/19
(नीलवंत प.)	''	''	16842 2/19
4. महाविदेह क्षे.	''	''	33684 4/19

(नीलवंत प.)	''	''	16842 2/19
5. रम्यक् क्षे.	''	''	8421 1/19
(रूक्मि प.)	''	''	4210 10/19
6. हैरण्यवंत क्षे.	''	''	2105 5/19
(शिखरी प.)	''	''	1052 12/19
7. ऐरावत क्षे.	अर्धचन्द्राकार	तीनोतरफ लवणसमुद्र है	526 1/19
			कुल - 1,00,000 यो.

उपर कहे हुए क्षेत्रो के नाम अनादि काल से इसी तरह शाश्वतभाव वाले है । अथवा उस क्षेत्र के अधिष्ठायक देव के नाम उपर से ये नाम है । अर्थात् उस क्षेत्र के अधिष्ठायक देव के भी नाम इसी तरह है ।

सोल वक्षस्कार पर्वत

○ महाविदेह क्षेत्र की पूर्व तरफ दो भाग में बंटी हुई 16 विजय और पश्चिम तरफ से दो भाग में बंटी हुई 16 विजय है, उसमें विजय - वक्षस्कार - विजय - अंतरनदी - विजय - वक्षस्कार - विजय - अंतरनदी ऐसे क्रमसे हर भाग में चार वक्षस्कार पर्वत है, चारो भागो के मिलकर 16 वक्षस्कार पर्वत होते है ।

○ जैसे विजय आमने-सामने है उसी तरह ये पर्वत भी आमने-सामने है, यानि अेक पर्वत निषध पास से शरु होकर उत्तर तरफ जाता है और सामने का पर्वत नीलवंत पास से शरु होकर दक्षिण तरफ जाता है, और दोनो की प्रारंभ में उंचाई 400 योजन होती है, और धीरे धीरे बढती बढती अंत में 500 योजन की उंचाई होती है इसलिये उनका आकार घोडे की गर्दन जैसा बनता है ।

चित्र और विचित्र पर्वत

ये दोनो पर्वत देवकुरू नामके क्षेत्र में है, अेक पूर्व व एक पश्चिम तरफ है। उंचाई - 1000 योजन, मूल में विस्तार - 1000 योजन, आकार गोल।

" यमक और समक पर्वत "

इसका स्वरूप उपर की तरह है, लेकिन ये दो पर्वत उत्तरकुरु क्षेत्र में अेक पूर्व में दूसरा पश्चिम में है।

२०० - कंचन गिरि

देवकुरु में	पूर्व-पश्चिम दिशामें	उत्तरकुरु में	पूर्व-पश्चिम दिशामें
प्रथम सरोवर की	" 10-10	प्रथम सरोवर की	" 10-10
दूसरे सरोवर की	" 10-10	दूसरे सरोवर की	" 10-10
तीसरे सरोवर की	" 10-10	तीसरे सरोवर की	" 10-10
चोथे सरोवर की	" 10-10	चोथे सरोवर की	" 10-10
पांचमें सरोवर की	" 10-10	पांचमें सरोवर की	" 10-10

ये पर्वत सुवर्णमय 'रंग के' 100 योजन ऊचे भूमि पर है। और क्रमसर कम होते हुऐ शिखर के आकार के बनते है।

चार गजदंत पर्वत

सौमनस	विद्युत्प्रभ	मात्यवंत	गंधमादन
स्थान कहा हे-			
देवकुरू के पासमें	देवकुरू के पासमें	उत्तरकुरु के पास	उत्तरकुरु के पास
दिशा - पूर्व में	पश्चिम में	पूर्व में	पश्चिम में
मूल - निषध के पास	निषध के पास	नीलवंत के पास	नीलवंत के पास

- अंत्यभाग मेरू के पास — मूल में पहोलाई - 500 योजन
- अंत्यभाग में अंगुल का असंख्य भाग — मूल में उंचाई - 400 योजन

- अंतमें 500 योजन ऊंचे		मूल में उंडाई -	100 योजन
लंबाई - 30209 - 6/19		अंत में गहराई -	125 योजन
वर्ण - सफेद	लाल	हरा	पीला

○ प्रथम दो देवकुरू को घेर कर रहे हुए है और दूसरे दो उत्तरकुरु क्षेत्र को घेर कर रहे हुए है । ये चारो पर्वत वक्षस्कार पर्वत की तरह घोडे की गर्दन के सदृश आकार को धारण करते है, अत: इनका वक्षस्कार अैसा दूसरा नाम है ।

मेरू पर्वत :-

ऊंचाई	नीचे चौडाई	शिखर उपर चौडाई	आकार	रंग
बहार- 99.000	10.000	1000	गोल	पीला
अंदर-1000	10090			सुवर्णजैसा

छ वर्षधर पर्वत

	चुल्लहिम -वंत	महाहिम -वंत	निषध	नील -वंत	रूक्मि	शिखरी
ऊंचाई.	100 यो.	200	400	400	200	100
अंदर.	25 यो.	50	100	100	50	28
चौडाई	1052	4210	16842	16842	4210	1052
रंग-	पीला	पीला	लाल	हरा	सफेद	पीला
किससेबने-	सुर्वण	सुर्वण- —मय	सुर्वण- —मय	वैडूर्यरत्न- -मय	चांदी- —मय	सुर्वण- -मय

4 वृत्तवैताढ्य, 16 वक्षस्कार प., 1 यमक, 200 कंचनगिरि 1मेरू प., 34 लंबे वैताढ्य, 2 चित्रविचित्र, 1 समक, 4 गजदंत प., 6 वर्षधर प., कुल - 269 पर्वत.

(1) विद्युत्प्रभ माल्यवंत और मेरू ये तीन पर्वतो का एक एक शिखर सहस्त्रांक कूट कहा जाता है, वे 1000 योजन ऊंचे क्रमश: हरिकूट हरिसह कूट और मेरू उपर नंदनवन में आये हुए का नाम बलकूट है ।उसका मूल में विस्तार 1000 योजन है, अत: 250 - 250 योजन दोनो

तरफ आधार बिना रहे हुए है, और शिखर उपर 500 योजन के विस्तार वाले है, लेकिन मेरू पर्वत उपर आया बलकूट 500 योजन नंदनवन में है, और 500 यो. निराधार है ।

(2) वैताढ्य के 306 गिरिकूट 6/1.4 योजन मूल में विस्तार वाले और उपर 3 यो. से किंचित अधिक विस्तार वाले है ।

(3) दूसरे 158 गिरिकूट 500 योजन उंचे 500 यो. मूल में विस्तार वाले और 250 योजन शिखर उपर विस्तार वाले है ।

(4) वैताढ्य उपर के नव शिखरो में बीच के तीन सुवर्णमय है और बाकी के ६ रत्नमय है ।

(5) इकसठ पर्वत उपर के कूट मे से अंतमें रहे हुए हर कूट को सिध्धकूट कहा जाता है, प्रत्येक सिध्धकूट उपर सिध्धायतन (शाश्वत जिनेश्वर का मंदिर) है, उस मंदिर के मध्य भाग में 108 प्रतिमा, हर द्वार पर चार चार प्रतिमा कुल मिलाकर 120 शाश्वत जिन प्रतिमा है । हर प्रतिमा 500 धनुष्य उंची है, उसके अलग -अलग अवयव विविध रत्न के बने हुए है ।

(6) सिध्धकूट बिना के 400 गिरिकूट उपर यथासंभव देव-देवीओ के सम चतुष्कोण प्रासाद (महेल) होते है, उसमें उस कूट के अधिपति देव या देवी रहते है ।

(7) सिध्धायतन के पश्चिम दिशा की तरफ द्वार नहि है, इहलिए तीन द्वार है ।

(8) सिध्धायतन का तथा प्रासाद का प्रमाण इस तरह है ।

नाम	लंबाई	विस्तार	ऊंचाई
34 वैताढय के			किञ्चितन्यून
34 सिद्धायतन	1 कोश	01/2 कोश	1 कोश
34 प्रासाद	01/2 कोश	01/2 कोश	1 कोश
शेष 27 पर्वत के			
27 सिद्धायतन	50 यो	25 योजन	36 योजन
27 प्रासाद	31/1/4	31/1/4 योजन	62/1/2 यो.

○ **भूमि कूट** - भूमि उपर जो शिखर होते है ।
○ **ऋषभकूट** - 34 विजयो में आमने-सामने पर्वत से निकलने वाली मूल नदीया अपने प्रताप कुंड में गिरके टेडी होती है । प्रतापकुंड के बीच में ऋषभ कूट होता है, उसके उपर ऋषभ नामका अधिष्ठायक देव है, जब चक्रवर्ती चोथे खंड को जितकर लघु हिमवंत के हिमवंत देव को जितने के बाद वापस लोटते समय ऋषभकूट कोअपने रथ के अग्रभाग से तीन बार स्पर्श करता है और काकिणी रत्न से पूर्व दिशामें अपना नाम लिखता है ।
○ **करिकूट** - महाविदेह क्षेत्र में मेरू की तलहटी में भद्रशाल नामके वन में दिशा और विदिशाके बीच में आठ आंतरे में आठ हाथीकेआकार वाले भूमि उपर शिखर है, वो दिग्गजकूट, हस्तिकूट, करिकूट कहलाते है, उसके उपर उन उन कूट के नामवाले आठ देवभवन है ।
○ **जंबूकूट** - महाविदेह क्षेत्र में आये हुए उत्तरकुरूक्षेत्र में जंबूद्वीप के अधिष्ठाता अनादृत देव के रहने योग्य छोटे बडे जंबूवृक्ष के परिवारवाला बडा जंबूवृक्ष है, उसके आस पास में 100-100 योजन विस्तार वाले तीन वन घेरा डाले हुए है । उसमें से प्रथम वनमें आठ विदिशा में जांबूनद सुवर्णमय ऋषभकूट जैसे 8 भूमिकूट पर्वत है । हर अेक के उपर 1 कोश लंबे 1/2 कोश विस्तार वाले और थोडा कम 1 कोश ऊंचे शाश्वत सिध्धायतन है ।
○ **शाल्मिलि कूट** - गरूडवेग देव के रहने योग्य जंबूवृक्ष की तरह शाल्मलिवृक्ष देवकुरू में है, उसके प्रथम वनमें शाल्मलि कूट रूप्यमय है, उसका स्वरूप जंबूकूट की तरह है ।
○ **तीर्थ** - जलाशय में उतरने का स्थान - ढाल
- इस भरत क्षेत्र में गंगा और सिंधू नदी के समुद्र के संगम स्थानमें जहां से लवणसमुद्र में प्रवेश किया जाता है । वो मागध और प्रभास नाम के दो तीर्थ है, बीच में वरदाम नाम का तीर्थ है ।
- इस तरह भरत अैरावत और महाविदेहक्षेत्र के 32 विजयो में मिलकर 102 तीर्थ है ।
- हर तीर्थ समुद्र के किनारे से 12 योजन दूर समुद्र में मागधादि देव के राजधानी वाले मागधादि द्वीप है ।

श्रेणीआ

○ विद्याधर श्रेणीआ - वैताढ्य पर्वत के उपर 10 योजन जाने पर 10 योजन चौडाईवाली और वैताढ्य जितनी लंबी उत्तर और दक्षिण दो मेखला (सपाट प्रदेश) आती है, उसमें उत्तर तरफ के सपाट प्रदेश पर रथनुपूर आदि 60 शहर (पर्वत की लंबाई ज्यादा होने से) और दक्षिण तरफ सपाट प्रदेश उपर 50 शहेर है, उसमें प्रज्ञप्ति इत्यादि विद्या देवीओ की मदद से मनोवांछित कार्य करने की शक्तिवाले विद्याधर जाति के मनुष्य रहते है ।

○ ऐरावत क्षेत्र में मेरू तरफ पर्वत की लंबाई ज्यादा होने से दक्षिण दिशा में 60 नगर है और उत्तर तरफ 50 नगर है, इस राजधानी शहेर के साथ दूसरे भी अनेक गांव होते है ।

○ महाविदेह की हर विजय के वैताढ्य में भी दोनो मेखला के उपर 55-55 नगर होते है, कारण कि इस वैताढ्य की दोनो तरफ लंबाई सम होती है । इस तरह 34 विजय की 68 विद्याधर नगर की श्रेणीआ होती है और 3740 कुल नगर होते है ।

○ आभियोगिक श्रेणीया - उपर कही हुई मेखला से 10 योजन उपर जाने पर 10 योजन विस्तार वाली वैताढ्य की दोनो तरफ दूसरी दो सपाट प्रदेश वाली मेखला आती है, दोनो के उपर आभियोगिक पदवी के तिर्यग्जृंभक व्यंतर देवके भवन है ।

मेरू से दक्षिण तरफ की 16 महाविदेह की विजयों और भरत के वैताढ्य उपर सौधर्म इन्द्र के लोकपालो के आभियोगिक तिर्यग्जृंभक व्यंतर देव रहते है । ओर उत्तर तरफ की 16 और 1 ऐरावत की विजय के वैताढ्य उपर इशानेन्द्र के लोकपाल के आभियोगिक तिर्यग्जृंभक व्यंतर देव रहते है ।

○ सोम - यम - वरूण और कुबेर ये चार तरह के लोकपाल देवो के साथ संबंध रखते हुए आभियोगिक व्यंतर देव है । आभियोगिक अर्थात् नौकर के रूप में काम करने वाले देव ।

इस तरह हर वैताढ्य के उपर चार श्रेणी गिनने पर कुल मिलाकर 136 श्रेणीया होती है ।

विजयों

भरत क्षेत्र ऐरावत क्षेत्र और महाविदेह में 32 विजय सभी मिलकर 34 विजय क्षेत्र है । विदेह में स्थित कच्छ आदि हर विजय 2212.7/8 योजन विस्तार है ।

6 महासरोवर

नाम	कहां	लंबाई	चौडाई	गहराई	किसका निवास
1. पद्महृद -	क्षुल्लहिमवंत उपर -	1000 -	500 -	10 यो.	श्री देवीका
2. महापद्महृद -	महाविमवंत उपर -	2000 -	1000 -	10 यो.	ह्री देवीका
3. तिगिच्छिहृद -	निषध उपर -	4000 -	2000 -	10 यो.	धी. देवीका
4. पुंडरिकहृद -	शिखरी उपर -	1000 -	500 -	10 यो.	लक्ष्मी देवीका
5. महापुंडरिकहृद -	रूविम उपर -	2000 -	1000 -	10 यो.	वृध्धि देवीका
6. केसरीहृद -	नीलवंत उपर -	4000 -	2000 -	10 यो.	किर्ति देवीका

भरत क्षेत्र में गंगा और सिंधु ये दो महानदीया लघुहिमवंत के पद्महृद में से निकलकर चौद हजार दूसरी छोटी नदीओ के साथ मिलकर क्रमसर पूर्व और पश्चिम तरफ बहकर लवणसमुद्र से मिलती है ।

उसी प्रकार ऐरावत क्षेत्र में रक्तवती और रक्ता शिखरी पर्वत के पूंडरीक हृद में से नीकलकर चौद चौद हजार छोटी नदीओ के साथ क्रमसर पश्चिम और पूर्व की तरफ बहकर लवण समुद्र से मिलती है ।

नदीओ का परिवार

नाम	कहां है	किस दिशा तरफ	परिवार
रोहिता	हिमवंत क्षेत्र में	पूर्व में बहती है	28.000

रोहितांशा	,, ,,	पश्चिम में बहती है	28.000
सुवर्ण कुला	हिरण्यवंत में	पूर्व में बहती है	28.000
रूपकुला	,,	पश्चिम में बहती है	28.000
हरिसलिला	हरिवर्ष क्षेत्रमें	पूर्व में बहती है	56.000
हरिकान्ता	,, ,,	पश्चिम में बहती है	56.000
नरकान्ता	रम्यक् क्षेत्र में	पूर्वमें बहती है	56.000
नारीकान्ता	,, ,,	पश्चिम में बहती है	56.000

कुल - 12 मुख्य नदी -392012 नदी यहां तक जाननी

○ सितोदा नदी - निषध पर्वत उपर से तिगिच्छ हृद में से निकलकर सितोदा के प्रवाह में गिरकर देवकुरू में बहकर मेरू के पास टेडी होकर देवकुरू में रही 84.000 नदीयो के साथ तथा 16 विजय की दो / नदी = 16 x 2 x 14.000 का परिवार और अंतरनदी छ मिलकर - 5,32006. मेंरू से पश्चिम की तरक बहकर समुद्रसेआलिंगन करती है ।

16 x 2 x 14.000 = 4,48000/
+ 84000
+ 6
5032006

○ सीता नदी - नीलवंत पर्वत के केसरी हृद में से निकलती है, उसका परिवार भी सीतोदा की तरह जानना पूर्व से होकर समुद्रसे भेटती है ।

अत : 5,32006
+ 5,32006
+ 3,92012

कुल 14,56090 नदीआ.

कच्छ आदि आठ विजय में एवं पद्म वि. (17 से 24) 8 विजय में गंगा और सिंघु नाम की और बाकी की विजयो में रक्ता और रक्तवती नामकी नदी है, उसका प्रवाह, ऊंडाई आदि भरत और अैरावत क्षेत्र की नदीओ के समान है ।

प्रवाह की चौडाई 125 यो., 21/2 यो. गहरी आरभ से अंत तक समान पट की ये नदीया परिवार बिना की है ।

गंगा - सिंधु-रक्ता- रक्तावती ये ब्राहय क्षेत्र की चार नदीया जिस सरोवर से निकलती है, वहां प्रारंभ में सवा छ यो. चौडे पट वाली है और उसके बाद 14.000 नदीओ का पाणी इक्कटठा होते हुए क्रमशः बढती बढती जहां समुद्र को मिलती है वहां साडे बासठ यो. जितने बडे पटवाली है । और हिमवंत व हिरण्यवंत क्षेत्र की चार नदीया प्रारंभ में 12 योजन और अन्त में 125 योजन चौडे पटवाली है, हरिवर्ष और रम्यक् क्षेत्र की 4 नदीआ प्रारंभ में 25 यो. व पर्यन्त में 250 योजन पट वाली है, इसी तरह सीतोदा और सीता नदी प्रारंभ में 50 योजन व पर्यन्त में 500 योजन चौडा प्रवाहवाली है ।

प्रत्येक नदी अपने प्रवाह से हर स्थान में पचासमें भाग जितनी गहराई वाली है । अतः गंगा आदि चार नदीया प्रारंभ में 01/2 कोश गहरी है ।

''पर्वत की उचाई व गहराई''

○ शिखरी और चुल्लहिमवंत सो योजन उंचे सुवर्णमय है रूक्मि और महाहिमवंत दोसो योजन उंचे क्रमशः रजत एवं सुवर्णमय है ।

○ निषध और नीलवंत 400 योजन उंचे है निषध तपनीय सुवर्णमय है और नीलवंत पर्वत वैडूर्य रत्नमय है ।

○ समय क्षेत्र में रहे हुए मेरू बिना के सभी मुख्य पर्वत ऊंचाई के चोथे भाग भूमि में दटे हुए है ।

○ जंबूद्वीप में दो सूर्य दो चंद्र जो सूर्य आज उगता है, वो सूर्य वापिस दूसरे दिन नहि लेकिन तीसरे दिन उगता है, हर चन्द्र का 28 नक्षत्र इत्यादि परिवार होने से 56 नक्षत्र, 176 ग्रह, 133950 कोडाकोडी तारे जंबूद्वीप में है ।

रात दिन का कारण

भरत क्षेत्र की चौडाई 526/6/19 योजन और पूर्व -पश्चिम लंबाई 14471/5/19 योजन और हमारी वर्तमान पृथ्वी की परिधि 25000 माईल है । और पूर्व - पश्चिम व्यास 7926 माईल उत्तर -दक्षिण 7900 माईल है अतः वर्तमान पृथ्वी का ज़ंबुद्वीप के दक्षिण में आये भरत क्षेत्र के नीचे के तीन खंड में आराम से समावेश हो सकता है ।

अमेरिका में भारत से सूर्योदय होने में 10 घंटे का अंतर होने मात्र से उसे महाविदेह क्षेत्र नहि माना जा शकता, क्योकि जैसे दीपक प्रथम अपने समीप के क्षेत्र को प्रकाशित करता है, बाद में उसे आगे आगे ले चलते है तब पूर्व के क्षेत्र में अंधेरा होता है और आगे आगे प्रकाश फैलता है, उसी प्रकार सूर्य का तीच्छीं प्रकाश ज्यादा से ज्यादा 47263-1/20 योजन तक फेलता है ।

अतः एवं निषध के पास जब सूर्य होता है, तब वह जापान को प्रकाशित करता है । धीरे धीरे भारत को, कलकता से बम्बई में सूर्योदय होने में अेक घन्टे का फरक है इस लिए भारत से अमेरिका में 10 घन्टे का अंतर पडना स्वाभाविक है **'श्री मंडलप्रकाश'** नाम के ग्रंथ में भी लिखा है कि जब जिस स्थान में सूर्य उदय होता है तब उससे पीछे दूराई पर रहने वाले लोगो का सूर्य का अस्त काल आता है, किसि को पहला प्रहर किसि को दूसरा प्रहर किसि को रात्रि होती है, इस प्रकार विचारणा से अष्ट प्रहर तक भारत के किसी न किसी भाग में अवश्य सूर्य प्रकाश होता है ।

सूर्य भ्रमण से ही दिन - रात होते है, नहि की पृथ्वी के घूमने से क्यों कि पृथ्वी का घूमना नामुमंकिन है, धरी आदि बात अयुक्त है पृथ्वी को लट्टु जैसी नहि मान सकते क्योकि लटु उपर पाणी टीकता नहि जब की पृथ्वी उपर तो पानी टीका रहता है।

उसके लिये गुरूत्वाकर्षण की भी सहाय नहि ले सकते क्योंकि

आपने (वैज्ञानिक) गुरूत्वाकर्षण की शक्ति 200 K.M. तक मानी है, उस शक्ति को लट्टु पर भी माननी पडेगी, लेकिन लटटु उपर तो पाणी टीकता नहि है । तथा रेल की पटरी दूर से संकडी दिखती है, उस कारण से भी पृथ्वी ग़ोल नहि मानी जा सकती है, क्योंकि दूराई के कारण एसा दिखता है । हकीकत में समानान्तर पर ही है, अन्यथा रेल के अेक तरफ के पहिये नीचे आ जाते । अनेक विदेशी वैज्ञानिक भी समुद्र सफर के लिए पृथ्वी को समतल गोल मानते है ।

तथा वैज्ञानिकके मत में पृथ्वी के घूमने पर भी सूर्य से दूराइ तो समान रहेती है, मोसम का परिवर्तन किस आधार पर होगा ?

हमारे मत में तो सूर्य उत्तरायण में सूर्य बाह्य मंडल में चला जाता है, अत: दूराई होने से गर्मी कम लगती है और दक्षिणायन में सूर्य अभ्यँतर मंडल में आ जाता है, अत: ताप लगता है ।

खगोल शास्त्री भी सूर्य भ्रमण के अनुसार सूर्योदय आदि मानते है उसके अनुसार ही हमे ग्रह नक्षत्र आदि का सब तरह का फेरफार (ग्रह नक्षत्र संधि, चंद्र नक्षत्र संधि) इत्यादि दिखाई देता है ।

इस विस्तृत विवरण का अर्थ यह नीकलता है कि पृथ्वी थाली जैसी गोल तथा स्थिर है और सूर्य घुमता है । महाविदेह में दिनरात समान होती है तथा छ ऋतु सदाकाल होती है । आज तक किसी वैज्ञानिकने धरी देखी नही है, मगर केवल अनुमान से कल्पना करते, यदि उनकी बात पर आप श्रद्धा कर सकते हो तो सर्वज्ञ वचन पर श्रद्धा करना ज्यादा श्रेयस्कर होगा ।

वैताढ्य की शाश्वत गुफा

हर वैताढ्य पर्वत की `` तमिस्त्रा गुफा '' और ` खंडक प्रपाता गुफा ' नाम की दो बडी गुफा है, जो चक्रवर्ती के शासन दोरान खुल्ली रहती है । अन्य काल में हंमेशा बंध रहती है । ये गुफा 8 योजन उंची 12 योजन चौडी व 50 योजन लंबी होती है । चक्रवर्ती अेक गुफा में होकर काकिणी रत्न

से दोनो तरफ दीवाल पर प्रकाश मंडल रचकर दूसरी तरफ निकलकर उस तरफ के तीन अनार्य खंड जीतकर दूसरी गुफा में होकर उसमें भी उसी तरह प्रकाश मंडल की सहायता से अपने खंड में आते है।

इस तरह गुफा प्रकाश मंडल से प्रकाशित होनेसे दूसरी तरफ के खंडो में आने जाने का व्यवहार सुलभ होता है।

वैताढ्य के 144 बील

भरत और अैरावत के वैताढ्य में दक्षिण तरफ और उत्तर तरफ ये गंगा सिंधु आदि महानदि के दोनो तट उपर नो नो बील होने से हर वैताढ्य की 72 बील अर्थात् छोटी गुफा है, इसलिये भरत व अैरावत के दो वैताढ्य के १४४ बील है, अवसर्पिणी के छठे आरे में जब बंहोत धूप व ठंडी आदि उपद्रव से मनुष्य एवं पशुओ का संहार (नाश) काल आयेगा,, तब बीलो में रहे हुए मनुष्य एवं पशु -पंखी जींदे रहेगे। और पुनः मनुष्य व पशुओ की वृध्धि इसी बीज रूप मनुष्य व पशुओ से होगी।

चार व चोत्रीश तीर्थंकर

पूर्व बतायी हुई 34 विजयो में 1-1 तीर्थंकर गिनने से उत्कृष्ट काल से 34 तीर्थंकर होते है और जघन्य से 4 तीर्थंकर भगवान महाविदेह क्षेत्र में विचरते है।

चक्रवर्ती - वासुदेव - बलदेव 4 व 30

महाविदेह में उत्कृष्ट से (28 विजय में) 28 चक्रवर्ती अथवा 28 वासुदेव और 28 बलदेव होते है और उसी समय भरत अैरावत में भी चक्रवर्ती आदि होने पर जुबूद्वीप में उत्कृष्ट काल से 30 चक्रवर्ती आदि होते है और जघन्य से 4 महाविदेह मे ही होते है। और महाविदेह की 28 विजय

28 चक्रवर्ती से युक्त होती है, तब शेष 4 विजय 4 वासुदेव तथा 4 बलदेव युक्त होती है । जयन्यकालमें 4 चक्री व 4 वासुदेव के अलावा की शेष विजय रिक्त रहती है ।

लेकिनअेक विजय में चक्रवर्ती और वासुदेव दोनो साथ में नहि होते ।

पंडुक वन में 4 अभिषेक शिला

मेरू पर्वत के शिखर उपर पंडुक नाम का वन है उसमें 500 योजन लंबी 250 योजन चौडी, 4 योजन जाडी (उंची) व अर्जुन (सफेद) सुवर्ण की चार महाशिला चार दिशामें है, उस शिला के उपर उस दिशा में जन्मे हुए श्री तीर्थकर परमात्मा का जन्माभिषेक होता है ।

306 - महानिधि

34 विजयो में से हर विजय में नैसर्प आदि नाम वाली 9-9 निधि पांचमे खंड में महानदी के किनारे के पास होती है । जैसे - गंगा महानदी के पूर्व किनारे की तरफ 9 निधि भूमि में है, हर निधि 12 योजन लम्बी 9 योजन चौडी व 8 योजन उंची पेटी के आकारवाली है तथा सुवर्ण से बनी हुई 8-8 चक्र उपर रही हुई है (आग गाडी के डिब्बे की तरह) उसमें हर परिस्थिति को बताने वाली शाश्वत पुस्तक होती है । हर निधि में उसी प्रकार के पदार्थ तैयार मिलते है । व उनकेअपने अपने नाम समान नामवाले देव अधिपति होते है ।

पांचवे खंड को साधकर चक्रवर्ती 9 निधि को भी साधता है। चक्रवर्ती दिग्विजय करके अपने नगर में आते है । तब वे निधि भी पाताल मार्ग से चक्रवर्ती के नगर बहार आ जाती है ।

चैत्यवंदन भाष्य

o तीन निसिहि -

(1) प्रथम निसिहि - मंदिर के अग्र द्वार पर प्रवेश करते समय कहने की है ` में अभी सभी पाप कार्यो का त्याग करता हुँ, यह सूचन प्रथम निसिहि का है, इसलिए मंदिर में प्रवेश करने के बाद किसि भी प्रकार की सांसारिक बात न करे ।

(2) दूसरी निसिहि - गभारे में प्रवेश करते समय दूसरी निसिहि बोलनेकी है, इसका अर्थ यह है कि मंदिर के दूसरे सभी कार्यो का त्याग करके भगवान की पूजा करता हुँ । उस समय केवल परमात्मा की पूजा में ध्यान होना चाहिए । पूजारी को, सलाट को, कारीगर आदि को कीसी भी प्रकार का काम नहि बताना चाहिए ।

(3) तीसरी निसिहि - परमात्मा की अंगपूजा, अग्रपूजा होने के बाद भावपूजा अर्थात् चैत्यवंदन करते पहले तीसरी निसिहि कहनी चाहिऐ इसका अर्थ यह है कि अभी द्रव्य पूजा का त्याग करके में भावपूजा रूप चैत्यवंदन करता है । अतः चैत्यवंदन करते करते अथवा बादमें प्रक्षालादि नहि किया जाता ।

तीन प्रदक्षिणा

अनादि काल के भव के फेरे को दूर करने के लिए और रत्नत्रय की प्राप्ति करने के लिए परमात्मा की दांयी तरफ से शरू करके तीन प्रदक्षिणा देने की है । जहां पर मंदिर में भमती हो वहां तीन प्रदक्षिणा देनी चाहिए । नहि तो हाथ जोड के आवर्त करे ।

प्रदक्षिणा के दोहे

काल अनादि अनंत थी भव भ्रमण नो नहि पार, ते भ्रमण निवारवा प्रदक्षिणा दउं त्रणवार ||1||

ज्ञान वडु संसारमां, ज्ञान परम सुख हेत, ज्ञान विना जग जीवडा न लहे तत्व संकेत. ||2||

भमती मां भमता थका, भव भावठ दूर पलाय, ज्ञान दर्शन चारित्र रूप त्रण प्रदक्षिणा देवाय ||3||

जन्म मरणादि भय टले सीझे वंछित काज, रत्नत्रय प्राप्ति भणी दर्शन करो जिनराज ||4||

प्रणाम त्रिक

(1) अंजलीबध्ध प्रणाम - परमात्मा को देखते ही मस्तक उपर दो हाथ जोडकर थोडा सा मस्तक नमाना ।

(2) अर्धावनत प्रणाम - परमात्मा के आगे स्तुति बोलते पहले कटि भाग से नीचा नमना । आधा शरीर को झुकाना

(3) पञ्चांग प्रणाम - दो घुंटन, दो हाथ, और एक मस्तक ये पांच अंगो को इक्कट्ठा करके प्रणाम करना..... भूमि पर लगाकर स्पर्श करना । चित्र देखीये.....

चित्र -

।। पूजा त्रिक ।।

(1) अंग पूजा - परमात्मा के अंग को स्पर्श करके जो केशर फूल आदि से पूजा होती है, उसे अंग पूजा कहते है ।

(2) अग्र पूजा - परमात्मा से थोडा दूर सामने रहकर धूप, दीप आदि से पूजा करते है, उसे अग्र पूजा कहते है ।

(3) भाव पूजा - परमात्मा के गुणगान गाना, योग्य प्रार्थना करनी चैत्यवंदन आदि विधि करना उसे भाव पूजा कहते है ।

।। अवस्था त्रिक ।।

(1) पिंडस्थ अवस्था - परमात्मा की जन्मावस्था, राज्यावस्था और श्रमण अवस्था का चिंतन करना ।

(2) पदस्थ अवस्था - परमात्मा की केवली अवस्था का विचार करना । समवसरण में देशना देते हुए, नव कमल उपर विचरते हुए...

(3) रूपातीत अवस्था - परमात्मा की मोक्ष अवस्था का विचार करना । निरंजन निराकार, सर्ववेत्ता सदासुखी...

।। दिशित्याग त्रिक ।।

परमात्म की मूर्ति जिस दिशा में है उसके उपर द्रष्टि रखके दूसरी तीन दिशा का त्याग करने से परमात्मा का बहुमान होता है ।

।। प्रमार्जना त्रिक ।।

चैत्यवंदन करते पहले भूमि को तीन बार पूजनी चाहिये । साधु को रजोहरण से व श्रावक को खेस से जीवरक्षा के लिए प्रमार्जना करके चैत्यवंदन करना चाहिये ।

आलंबन त्रिक

(1) सूत्र आलंबन - चैत्यवंदन में आते हुए सूत्रो का स्पष्ट उच्चार करना व उस अक्षरो में (शब्दो में) बोलते समय ध्यान रखना ।

(2) अर्थ आलंबन - चैत्यवंदन के सूत्र बोलते समय उसके अर्थ-भावार्थ का भी साथ में ध्यान रखना, केवल पोपट की तरह शुष्क ह्रदय से न बोलना, उसका कुछ भी लाभ नहि है, इसलिए चैत्यवंदन का पूरा लाभ उठाना हो तो उसका अर्थ -भावार्थ का ज्ञान प्राप्त करना जरूरी है । अर्थ के ज्ञान से क्रिया करने में अतिशय भावोल्लास जाग्रत होता है ।

(3) मूर्ति आलंबन - चैत्यवंदन करते समय अपनी नजर परमात्मा के सामने रखनी चाहिये ।

मुद्रात्रिक

(1) योग मुद्रा - हाथ की अंगुली को अेक दूसरे के बीच में डालकर दो हाथ जोडकर कोणी-कोहनी को पेट पर रखकर हाथ जोडना ।

चित्र - २

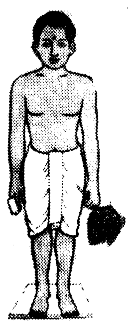

जिन मुद्रा

(2) मुक्तासुक्ति मुद्रा - (मोती के) छीप की तरह दो हाथ की अंगुलीओ के अग्रभाग को जोडकर, हाथ बीच में से पोले खोखले रखना और कपाल पर लगाना ``जावंति'' जावंत के विसाहु ``जयवीयराय'' सूत्र इस मुद्रासे बोले जाते है ।

चित्र - ३

योग मुद्रा

(3) जिन मुद्रा - दो पैर के बीच में चार अंगुल का अंतर और पीछे थोडा कम अंतर रखना दो हाथ लटकते रखना तथा मन-वचन-काया को स्थिर रख कर काउसग्ग करना उसे जिन मुद्रा कहते है, दीक्षा लेकर जिन - भगवान प्रायः काउसग्ग मुद्रा में रहते है। मुद्रा - आकार विशेष ।

चित्र - ४

मुक्ता सुक्ति मुद्रा

प्रणिधान त्रिक

प्रणिधान अर्थात् अशुभ, मन, वचन, काया का त्याग करके शुभ क्रिया में मन - वचन - काया को जोडना - लयलीन बनाना ।

(१) जावंति चेइआई (२) जावंत केविसाहू (३) जयवीयराय ये प्रणिधान सूत्र है ।

।।।।। पांच अभिगम (अेक प्रकार का विनय) ।।।।।

(1) सचित्त वस्तु का त्याग करके मंदिर में प्रवेश करते समय गले में फुल का हार, हाथ में गजरा आदि हो तो मंदिर के बहार छोड कर जाना, वह प्रथम अभिगम है ।

(2) अचित्त वस्तु को लेकर मंदिर में जाना चाहिए, खाली हाथ देव गुरु के पास जाना न चाहिए । कमसे कम चावल बदाम वरख आदि लेकर जाना चाहिए । जहां से प्राप्त करना है वहां लेकर जाना, जैसे राजा के पास नजराना लेकर जाते है ।

(3) चित्त की अेकाग्रता - परमात्मा के दर्शन पूजा करते समय अपना चित्त उसमें तन्मय बनना चाहिए ।

(4) उत्तरासंग - (खेस) - मंदिर में दर्शन पूजा करने के लिए जाते समय शरीर पर खेस धारण करना चाहिए।

(5) अंजली जोडना - परमात्मा को देखते ही मस्तक झुकाकर हाथ जोडकर 'नमोजिणाणं' बोलना । राजा मंदिर में दर्शन पूजन करने जाय तब तलवार, छत्र, जुते, मुगट व चामर ये पांच चीज बहार छोडनी चाहिये ।

'' प्रभु दर्शन की दिशा ''

मंदिर में परमात्मा के दर्शन करते समय पुरूषो को परमात्मा की दाहिनी तरफ व महिला को परमात्मा की बायी तरफ खडा रहना चाहिये ।

'' अवग्रह ''

जघन्य - कमसे कम परमात्मा की मूर्ति से नव हाथ।

मध्यम - 10 से 59 हाथ ।

उत्कृष्ट - 60 हाथ दूर रहकर दर्शन करना चाहिये।

प्रभु को अपना दुर्गंधी श्वासोश्वास-सांस न लगे इस आशातना से बचने के लिए अवग्रह रखने का है।

।। तीन वंदना ।।

(1) जघन्य (2) मध्यम (3) उत्कृष्ट

(1) **जघन्य वंदना** - केवल नमो अरिहंताणं अथवा कोई प्राचीन स्तुति स्तवन बोलने से जघन्य चैत्यवंदन होता है ।

- केवल मस्तक नमावे
- केवल दो हाथ जोडे
- केवल दो हाथ को मस्तक पर लगावे
- दो घुटने पर बैठकर दो हाथ जोडे
- पंचांग प्रणिपात करे

(2) **मध्यम वंदना में** - अरिहंत चैइआणं बोलकर अन्नत्थ सूत्र के बाद अेक नवकार का काउसग्ग करके उपर अेक स्तुति बोले, चैत्यवंदन नमुत्थुणं स्तवन तथा (1) स्तुति पूर्वक स्तवना करना, अथवा जिसमें चार स्तुति व पांच दंडक सूत्र आते है, उसे मध्यम चैत्यवंदना कहते है ।

(3) **उत्कृष्ट चैत्यवंदना** - देववंदन करना जिसमें पांच शक्रस्तवे व 8 थोय (दो थुइ जोडे) आती है ।

प्रथम इरियावहि करके बाद में चैत्यवंदन करते है तो क्रियाशुध्ध होती है । (महानिशीथ)

प्रणिपात - पंचांग प्रणाम करना

दो घुटने + दो हाथ + 1 मस्तक ये पांचो अंग भूमि पर स्पर्श होवे इस तरह प्रणाम करना ।

वर्ण द्वार - वर्ण अर्थात् अक्षर चैत्यवंदन मे आने वाले सूत्रो के कूल कितने अक्षर है उसका विचार इसमें है, इसलिए कम अधिक अक्षरकरके सूत्र न बोले, उसका पूरा ध्यान रखना जैसे ``सव्व'' की जगह सव ।

सूत्र के नाम	वर्ण	संपदा	जोडाक्षर	पद
नवकार मंत्र में	68	8	7	9
प्रणिपात सूत्र में	28	-	3	-

इरियावहि तस्सउत्तरी	199	8	25	32
शक्रस्तव	297	9	33	33
अरिहंत चे. अन्नत्थ	229	8	29	43
लोगस्स	260	28	28	28
पुक्खरवरदी	216	16	34	16
सिध्धाणं वैयावचगराणं	198	20	35	20
जावंति चे..	35	-	3	-
जावंत के.	38	-	1	-
जयवीयराय	79	-	8	-

○ पद अर्थात् लाईन अथवा श्लोक का चोथा भाग इसे पद कहते है ।

○ संपदा अर्थात् सूत्र बोलते समय बीच बीच में थोडासा रूकने का विश्राम स्थान, अत अेक ही सांस में सूत्र पूरा न करना ।

किस सूत्र में संपदा कहाँ तक आती है इसका विचार

(1) नवकार मंत्र में -

नमो अरिहंताणं से सव्वपावप्पणासणो तक 7 संपदा

मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं हवई मंगलम् 1 संपदा

(2) इरियावहि तस्सउत्तरी में -

इच्छामि पडि. - पहली संपदा,

गमणागमणे - दूसरी संपदा,

पाणक्कमणे - तीसरी संपदा,

ओसा उत्तिंग - चोथी संपदा,

जेमे जीवा विराहिया पांचमी

अेगिंदिया - छठी संपदा

अभिहया तस्स मिच्छामि दुक्कडम् सातवी संपदा ।

तस्स उत्तरी...ठामि काउ. -

आठवी संपदा ।

(3) नमुत्थुणं -

नमुत्थुणं अरिहंताणं भागवंताणं -	पहली संपदा
आईगराणं तित्थयराणं सयं संबुद्धाणं -	दूसरी ''
पुरिसुत्तमाणं से पुरिसवर गंधहत्थीणँ तक	तीसरी ''
लोगुत्तमाणं से लोगपज्जोअगराणं तक -	चोथी ''
अभयदयाणं से बोहिदयाणं तक -	पांचमी ''
धम्मदयाणं से धम्मवर चाउरंत चक्कवट्टीणं तक-	छठी ''
अप्पडिहय वरनाणं से वियट्टछउमाणं तक -	सातमी ''
जिणाणं जावयाणं से मुत्ताणं मोअगाणं तक	आठवी ''
सव्वन्नूणं से जिअभयाणं तक -	नवमी ''

(4) अरिहंत चे. व अन्नत्थ सूत्र में

अरिहंत चे. करेमि काउ. -	पहली संपदा
वंदणवत्तिया से निरुवसग्ग वत्तिया तक -	दूसरी ''
सध्धाए से ठामि काउसग्ग तक -	तीसरी ''
अन्नत्थ से भमलीए पित्तमुच्छाए तक -	चोथी ''
सुहुमेहिं अंग से सुहुमेहिं दिट्ठी संचालेहिं तक -	पांचमी ''
अेवमाइअेहिं से हुज्ज मे काउसग्गो तक -	छठी ''
जाव अरिहंताणं से नमुक्कारेणं न पारेमि तक	सातवी ''
तावकायं से अप्पाणं वोसिरामि तक –	आठवी ''

पांच दंडक सूत्र

(1) नमुत्थुणं (2) अरिहंतचे. (3) पुक्खरवरदी. (4) लोगस्स (5) सिध्धाणं बुद्धाणं ।

○ शास्त्र में कही हुई मुद्रा से अस्खलित रीत से जो सूत्र बोले जाते है उसे दंडक सूत्र कहते है ।

अधिकार

(1) नमुत्थुणं से जिअभयाणं तक भावजिन का अधिकार

(2) ``जे अईआ सिध्धा'' से ``तिविहेण वंदामि'' तक द्रव्यजिन का अधिकार (जिनका भाव निक्षेप वंदनीय उसके नामादि तीनो निक्षेप वंदनीय है)

(3) **अरिहंत चे.** में स्थापना जिनवंदन का अधिकार है। मंदिर में स्थापित जिन मूर्ति को वंदन इस सूत्र से होता है ।

(4) **लोगस्स** सूत्र में जिन नाम कीर्तन का अधिकार है।

(5) **सव्वलोए अरिहंत चे.** से तीन भुवन रहे हुए जिन मंदिरो में स्थापित सभी जिन मूर्ति को वंदन करने में आता है । इस लिए सर्व जिन बिम्ब वंदन अधिकार है ।

(6) **पुक्खरवरदी** से **नमंसामि** तक 20 विहरमान जिन को वंदन का अधिकार है ।

(7) **तमतिमिर पडल विध्धं** श्रुतस्तव का अधिकार है ।

(8) **सिध्धाणं बुध्धाणं** की प्रथम गाथा में सिध्धभगवंतो की स्तुति का अधिकार ।

(9) **जो देवाण वि देवो** से वीर भगवान की स्तुति का अधिकार

(10) **उज्जिंतसेलसिहरे** से नेमनाथ भागवान की स्तुति का अधिकार ।

(11) **चत्तारि अट्ठदस दोय** से अष्टापद पर स्थपित चोवीश जिन की स्तुति का अधिकार ।

(12) वैयावच्चगराणं से संघ की वैयावच्च करने वाले शासनदेव के स्मरण का अधिकार है।

`` वंदनीय - 4 ''

(1) जिनेश्वरदेव
(2) सिध्ध भगवंत
(3) साधु भगवंत
(4) श्रुतज्ञान

" स्मरणीय - 1 "

संघ की रक्षा, शासन सेवा करने से और सम्यग्द्रष्टि होने से शासनदेव स्मरणीय (याद करने लायक है)

" जिन - 4 "

(1) नाम जिन - परमात्मा का नाम ।

(2) स्थापना जिन - परमात्मा की मूर्ति को स्थापना जिन कहते है ।

(3) द्रव्य जिन - तीर्थंकर नाम कर्म निकाचित करेवहां से लगा कर केवलज्ञान नही हो, वे तब तक द्रव्य जिन कहलाते है अथवा भूतकाल में हुए जिनेश्वर भी द्रव्य-जिन कहलाते है ।

(4) भाव जिन - समवसरणमें भवि जीवो को देशना देने वाले ।

" चार थोय "

○ प्रथम थोय मूलनायक की अथवा 1-16-22-23-24 वे तीर्थंकर की ।

○ दूसरी थोय सभी जिनेश्वर कीं ।

○ तीसरी थोय श्रुतज्ञान कीं ।

○ चोथी थोय शासनदेव कीं ।

○ सद्धाए - मिथ्यात्व मोहनीय के क्षयोपशम से अथवा उत्पन्न हुई श्रध्धा से, किसी भी प्रकार के दवाब व दाक्षिण्यता से नहिं।

○ मेहाए - जडता से नहि । ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न हूई सूक्ष्म बुध्धि से ।

काउसग्गमें विशेष उपयोगी

○ धिइए - मन की समाधि से । लेकिन राग द्वेषसे व्याप्त चित्त से नहिं।

○ धारणाए - अरिहंत परमात्मा के गुणो के स्मरण से । मन की शून्यता से नहिं ।

○ अणुप्पेहाए - अरिहंत परमात्मा के गुणो का बार-बार स्मरण करने से।

○ सोल आगार - जिस को रोकना मुश्किल है, एसी काउसग्ग में दी गई

छूट को आगार कहते है ।

(1) उंची सांस लेना
(2) नीची सांस लेना
(3) खांसी आना
(4) छींक आनी
(5) बगाई आना
(6) ओडकार आना
(7) पवन छूटना
(8) चक्कर आना
(9) उल्टी होना
(10) सूक्ष्म शरीर चलाना
(11) श्लेष्म का संचार होना
(12) दृष्टि संचार होना
(13) अग्नि का भय
(14) राज भय होना
(15) चोर भय
(16) सर्प डंश का भय होना

○ इस सोल आगार में शरीर का हलन चलन होने पर भी काउसग्ग का भंग नहि होता है ।

काउसग्ग के 19 दोष

1. घोटक दोष - घोडे की तरह एक पैर उंचा रखके काउसग्ग करना ।
2. उध्धी दोष - दो पैर मिलाकर काउसग्ग करना ।
3. निगडं दोष - दो पैर फेला कर काउसग्ग करना ।
4. लता दोष - शरीर को धूनाना । जैसे हवा से लता कम्पती है ।
5. शिरकंप दोष - मस्तक धूनाना- हिलाना ।
6. स्तंभादि दोष - थंभे का या दीवार का सहारा लेकर काउसग्ग करना ।
7. माल दोष - छत को मस्तक लगाकर काउसग्ग करना ।
8. शबरी दोष - गुह्यभाग (गुप्त स्थान) पर हाथ लगाना ।
9. स्तन दोष - मच्छर आदि के कारण सीने पर वस्त्र ढकना ।
10. संयती दोष - पूरे शरीर को ढककर काउसग्ग करना ।
11. लंबुत्तर दोष - चोलपट्टे धोती को घुटने के नीचे तक पहनकर काउसग्ग करना ।

12. कपित्थ दोष - मेरे कपडे मलीन हो जायंगे एसे भय से वस्त्र को संकोचकर रखना ।

13. खलिन दोष - घोडे की लगाम की तरह ओघा या चरवले की दशी (गुच्छे) आगे रखना व दंडी पीछे रखना ।

14. वधु दोष - बहु की तरह सिर झुकाकर काउसग्ग करना।

15. भ्रमितागुंली - अंगुली के पर्व / वेढे से काउसग्ग गीनना ।

16. मूक दोष - हुं हुं अवाज करते काउसग्ग करना ।

17. वारुणी दोष - बुड - बुड अवाज करते काउसग्ग करना ।

18. वायस दोष - कौए की तरह आंख के डोले फिराते काउसग्ग रहना ।

19. वानर दोष - बन्दर की तरह ईधर उधर देखते देखते व होठ के हलन-चलन से काउसग्ग करना ।

" स्तवन कैसा बोलना चाहिए "

○ अपने आत्मा के दोषो को दर्द भरे ह्रदय से प्रगट करनेवाला संवेग व बैराग्य को उत्पन्न करनेवाला, महा अर्थवाला, परमात्मा के अनंत उपकारो को याद करानेवाला, महापुरुषो से रचित "**प्रवचनसारोद्धार**" स्तवन बोलना चाहिए।

'सात चैत्यवंदन'

1. सुबह के प्रतिक्रमण में - जगचिंतामणी का ।
2. सुबह के प्रतिक्रमण में - विशाल लोचन का ।
3. सुबह मंदिर में ।
4. पच्चक्खाण पारने के समय ।
5. भोजन करने के बाद ।
6. शाम को प्रतिक्रमण में - नमोऽस्तु वर्धमानाय का ।
7. संथारां पोरिसि के समय - चउक्कसाय का ।

ये सात चैत्यवंदन साधु-साध्वीजी को व पौषधवाले श्रावक श्राविका को प्रतिदिन करने के होते है ।

चोविहार उपवास वाले को पांच चैत्यवंदन होते है, शेष श्रावक-श्राविका को 5-4-3-2 भी होते है ।

॥ मंदिर की बडी 10 आशातना ॥

1. पान-सोपारी खाना
2. पानी पीना
3. भोजन करना
4. जुत्ते पहनकर जाना
5. मैथुन का सेवन
6. सो जाना
7. थुंकना
8. पेशाब करना
9. संडास जाना
10. जुआ खेलना

ये मंदिर की 10 बडी आशातना कीसी भी प्रकार के प्रयत्न से छोडनी चाहिए । छोटी आशातना 84 है ।

॥ गुरू वंदन भाष्य ॥

○ वंदन के पांच नाम

(1) वंदन कर्म - शुभ मन वचन काया से गुरु को वंदन करना स्तुति करनी आदि ।

(2) चिति कर्म -रजोहरण, मुहपत्ति, चोलपट्टा आदि उपधि के साथ जो वंदन की क्रिया होती है, उसे चितिकर्म कहते है ।

(3) कृति कर्म - मोक्ष के लिए गुरू को जो नमस्कार - वंदन करने में आता है, उसे कृतिकर्म कहते है ।

(4) पूजा कर्म - मन-वचन-काया सें शुभ प्रवृत्ति करनी, उसे पूजा कर्म कहते है ।

(5) विनय कर्म - कर्म को नाश करने वाली गुरू महाराज के अनुकूल जो प्रवृत्ति वो विनय कर्म ।

अवंदनीय पांच

(1) **पासत्थो -** वेश साधु का रखे लेकिन क्रिया न करे साधु का आचार न पाले, उसे पार्श्वस्थ कहते है ।

(2) **ओसन्नो -** साधु की दश प्रकार की सामाचारी का पालन न करे, चातुर्मास से अतिरिक्त कालमें भी पाट का उपयोग करे, निष्कारण से आधाकर्मी आहार ग्रहण करे, उसे अवसन्न कहते है ।

(3) **कुशील -** ज्ञानाचार आदि की विराधना करे यंत्र, मंत्र, चमत्कार, जडीबुट्टी आदि करे, ज्योतिष, स्वप्न फल भाव तोल कहे, स्नान तेल मर्दनादि करे, शरीर शोभा बढाए वह कुशील साधु है ।

(4) **संसक्त -** मूल गुणो में दोष उत्पन्न करे, स्त्रीका सेवन करने वाला, तीन गारव से युक्त बुरी संगत रखनेवाला, संविग्न के पास रहनेपर उनके जेसा आचरण करे और पासत्थ आदि के पास रहने पर उनके जैसा बन जाय ।

(5) **यथाछंद -** अपनी बुध्धि से शास्त्रो के अर्थ करे, शास्त्र विरूध्ध बोले गृहस्थ के सावद्य कार्यो में भी भाग ले, कारण बिना विगई आदि का सेवन करे ।

वंदनीय – पांच

(1) आचार्य - गच्छ के नायक, साधुओ के गुरू, ३६ गुणो से युक्त ।

(2) उपाध्याय - वर्तमान श्रुत के वेत्ता तथा साधुओ को शास्त्र का अध्यापन कराने वाले ।

(3) प्रवर्तक - साधुओ को क्रियाकांड में प्रवृत्ति कराने वाले ।

(4) स्थवीर - संयम से शिथिल होते हुए साधु को स्थिर करने वाले ।

ज्ञानस्थवीर - सुत्रकृतांग वेत्ता पर्यायस्थवीर - 20

वयस्थवीर - 60 वर्ष

(5) रत्नाधिक - दीक्षा पयार्य में जो बडे होते है ।

अग्राह्य वंदन

(1) दीक्षित पिता - प्रथम दीक्षित पूत्र-पुत्री हो तो भी उसको वंदन नहि करे ।

(2) दीक्षित माता - प्रथम दीक्षित पुत्र-पुत्री हो तो भी उसे वंदन नहि करे

(3) बडा भाई दीक्षा में छोटा हो तो भी बडा भाई छोटे भाई को वंदन नहि करे (बहन के सबंध मे भी इस प्रकार समझ लेना चाहिए ।)

(4) रत्नाधिक - अपने से दीक्षा में छोटा हो तो उसको वंदन नहि करे. लेकिन माता - पिता या बडा भाई संसारी अवस्था में हो तो दीक्षित छोटे पुत्र / भाई को वंदन करे ।

वंदन के लिए अनवसर

(1) वंदनीय आचार्य आदि धर्म चिंता मे हो ।

(2) वंदन करने पर लक्ष न हो अथवा खडे हो ।

(3) वंदनीय प्रमाद में हो क्रोध में या निद्रा में हो ।

(4) आहार करने की लिये या वडीनिति / लघुनीति जाने की तैयारी में हो । असमय पर वंदन करने से धर्म में अंतराय, वंदन पर अलक्ष, क्रोध, रोग इत्यादि उत्पन्न होता है, इसलिए वंदन का अवसर जानकर वंदन करे ।

वंदन करने का अवसर

(1) गुरु महाराज शांत व अप्रमत्त बैठे हो ।

(2) आसन पर बैठे हो ।

(3) 'छंदेण' इत्यादि कहने के लिए तैयार हो ।

छंदेण आदि का अर्थ 'खामेमि' 'देव गुरु पसाय' इस प्रकार प्रश्न का उत्तर देने को तैयार हो तब बंदन करना ।

वंदन करने के आठ कारण

(1) प्रतिक्रमण में (द्वादशावर्त वंदन करे वो)
(2) वाचना लेते समय गुरु को वंदन होता है वो.
(3) काउसग्ग करते समय योगमें साधुओ को (क्रियाकारक साधु को) वंदन करते है वो.
(4) अपराध की क्षमा मांगते समय वंदन करते है वो.
(5) प्राघुर्णक - महेमान साधु आवे तब वंदन करते है वो.
(6) आलोचना करते समय गीतार्थ गुरु को वंदन करते है वो.
(7) पच्चक्खाण लेते समय गुरु को वंदन करते है वो.
(8) संलेखना (अनशन) करते समय गुरु को वंदन करते है वो.

।। पच्चीस - आवश्यक ।।

1 यथाजात - वांदणा देते समय साधुको केवल रजोहरण, मुहपत्ति और चोलपट्टा रखने का है . श्रावक को चरवला, मुहपत्ति धोती रखनी चाहिए ।

2 अवनत - (अवनमन) - इच्छामि खमासमणो......... निसिहियाए गुरु की इच्छा जानने को नमन करे, दो बार के वांदणा में दो बार नमन।

3 प्रवेश - गुरु की आज्ञा को प्राप्त करके गुरु के अवग्रह में गुरुवंदन करने के लिए प्रवेश करना, दो वांदणा में दो बार ।

1 निर्गम - पहेली बार वंदन करके गुरु के अवग्रहमेंसे बहार निकलना ।

12 आवर्त - अहो, कायं, काय, जत्ताभें, जवणि, ज्जंचभे ये दो वांदणा के 12 आवर्त होते है ।

रजोहरण अथवा चरवला मस्तक को 12 बार अंजलि का स्पर्श करना।

4 शिरनमन - ``संफासं खमणिज्जो भे किलामो खामेमि खमासमणो'' बोलते ओघे को अथवा चरवले को गुरु चरण की कल्पना करके वहा मस्तक स्पर्श करना उसे शिर नमन कहते है ।

3 गुप्ति - 1. वांदणा देते समय मन को अेकाकार बनाना
2. अस्खलित अक्षरो का उच्चारण करना
3. आवर्तो की अविराधना (काया से) हीनाधिक न करना

मुहपत्ती और शरीरकी 50 पडिलेहणा और 50, बोल

सुचना : चरवलावालेको हि उभडक बेठकर पडिलेहण करने का अधिकार है। न हो तो बेठकर पडिलेहण करे.

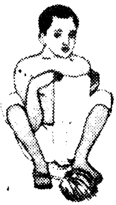

1. उभडक बेठो,
2. हाथ दो पांव की अंदर रखो
3. मुहपत्ती खोलो,
4. फिर अवलोकन करो साथमें

'सूत्र' इस बोल/शब्द को मनमें बोलो.

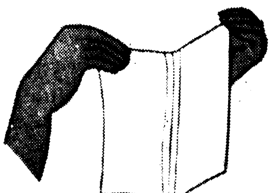

मुहपत्तीको दूसरी तरफ घुमाओ प्रमार्जना करनेके साथ **'अर्थतत्त्वकरीसद्दहुं'** बोलो

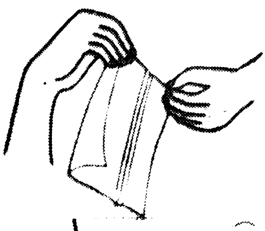

''सम्यक्त्व मोहनीय, मिश्र मोहनीय मिथ्यात्व मोहनीय परिहरूं'' ये बोल बोलकर महुपत्तीके अेक पल्ले को तीनबार हिलाना/झुंझलाना ।

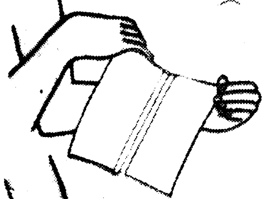

''काम राग, स्नेह राग, द्रष्टि राग परिहरूं'' ये बोल बोलकर मुहपत्ती के छेडेको तीनबार ढिंढोले / हिलावे फिर चित्र अनुसार बाये हाथकी कलाई पर डाले.

मुहपत्तीको चित्रके अनुसार
अंगुलीओमें डालें फिर
अंगुलीसे कांडा तरफ और फिर
कांडासे अंगुली तरफ मुहपत्ती
द्वारा तीन तीन बार प्रमार्जना करों,
साथमें नीचेके बोल बोले

''सुदेव, सुगुरू, सुधर्म आदरूं''
''कुदेव, कुगुरूं, कुधर्म परिहरूं''
ज्ञान दर्शन चरित्र आदरूं,
ज्ञान विराधना दर्शन विराधना,
चरित्र विराधना परिहरूं,''
''मनो गुप्ति, वचन गुप्ति,
काय गुप्ति, आदरूं, मनोदंड,
वचन दंड, कयदंड परिहरूं''

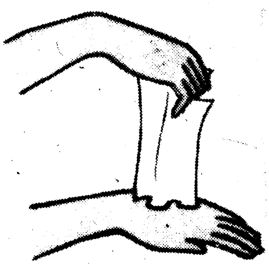

फिर दाहिने हाथमें पृष्ठभाग पर
मुहपत्ती (छठ्ठा चित्र अनुसार) घुमाते

''हास्य, रति, अरति
परिहरूं'' बोलो

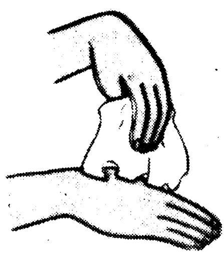

फिर दाहिने हाथमें मुहपत्ती डालकर
दाहिने हाथमें पृष्ठभाग पर घुमाते
''भय, शोक, जगुप्सा
परिहरूं'' बोलो

शरीरकी 25, पडिलेहणामें मस्तकादिकी पडिलेहणा

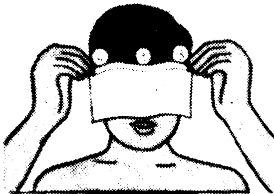

फिर मुहपत्तीके दो छेडे को दो हाथसे पकडके मस्तककी मध्य व दोनो तरफ पडिलेहणा करे अनुक्रमसे **''कृष्ण लेश्या, नील लेश्या, कापोत लेशया, परिहरूं''** बोलो.

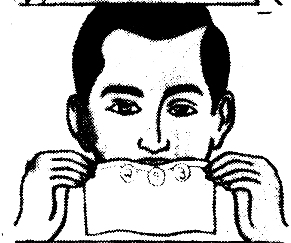

फिर मुखकी प्रमार्जना करते **''रसगारव, रिद्धिगारव, सातागारव परिहरूं''** बोलो.

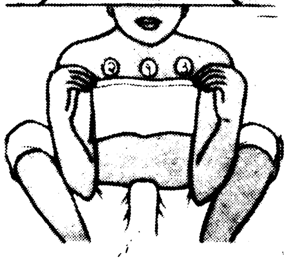

फिर सीनेकी पडिलेहणां करते **''मायाशल्य, नियाणशल्य, मिथ्यात्वशल्य परिहरूं''** ये बोल मनमें बोलो

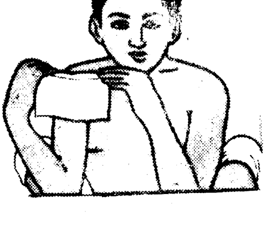

फिर मनमें नीचेके बोल के उच्चारण पूर्वक दाहिने कंधोकी पडिलेहणा करो - **''क्रोधमान परिहरूं''** बाये खभे करते समयं **''मायालोभ परिहरूं''** बोलो.

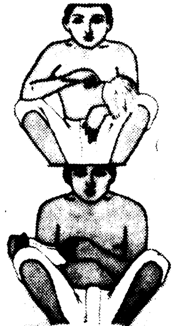

चरवलासे अथवा मुहपत्तीसे
दाहिने पेर की (3 ,वार) प्रमार्जना करते
''पृथ्वी काय, अपकाय,
तेउकायनी रक्षा करूं''
एवं बाये पेर पर करते
''वायुकाय, वनस्पतिकाय,
त्रसकायनी रक्षा करूं'' बोलो.

वंदन के 32 दोष

1. अनादृत - चित्त में आनंद बिना वंदन करे , हृदय में अहोभाव नहि होना।
2. स्तब्ध - अभिमान से वंदन करे ।
3. तर्जना - आपको बंदन करे तो भी क्या ? न करे तो भी क्या ? आप खुश या नाराज तो होते भी नहि हो, एसा बोलकर वंदन करे ।
4. हीलीत - आपको वंदन करने से क्या ? अैसी अवज्ञा से वंदन करे
5. मनःप्रदुष्टः - वंदन के दोषो को ध्यान रखके अरुची से वंदन करे
6. भय - यदि में वंदन नहि करूंगा तो मुझे समुदाय से बहार निकालेगे एसे भयसे वंदन करे ।
7. भजन्तः - मेरा भी ध्यान रखेंगे ऐसे आशयसे अथवा हे आचार्य ! हम तुमको वंदन करने के लिए खडे है, इस प्रकार का उपकार बताते वंदन करे ।
8. मैत्री - मै इसको वंदन करूंगा तो ये मेरे मित्र होंगे, इनका प्रेम हमारे उपर रहेगा, इस भावना से वंदन करे ।
9. कारण - वस्त्र पात्रादि के लोभ से वंदन करे ।
10. गौरव - दूसरे साधु एसा जाने कि में बहोत सामाचारी कुशल हुँ, इस तरह अपने गौरव को बतलाता हुआ वंदन करे ।
11. कर - वंदन को कर समजकर वंदन करे दीक्षा ली इसलिए अब तो हंमेशा वंदन करना पडेगा, एसा मानकर वंदन करे ।

12. करमोचन - राजा आदि का तो कर छूट गया, लेकिन ये वंदन के कर से मुक्त नहि हुए, एसा मानकर वंदन करे ।
13. स्तेन दोष - इसको वंदन करने से मेरी लघुता होगी एसा समजकर छूपकर वंदन करे ।
14. दृष्टादृष्ट - सभी के बीच में रहकर कोइ देखे नहि तब वंदन न करे देखने पर करे ।
15. शठ - अंदर से कपट रखकर विश्वास पात्र बनने के लिए विधिसे वंदन करे अथवा में बीमार हूं इत्यादि बहाना बनाकर अविधि से वंदन करे ।
16. प्रत्यनीक - अनवसरे वंदन करे जब गौचरी करने केलिये अथवा स्थंडिल भूमि के लिये जाये तब बोले कि ठहरो मेरे वंदन करना है ।
17. रुष्ट दोष - गुरु या स्वंय रोष में हो तब वंदन करे ।
18. पविध्ध दोष - वंदन क्रिया को आधी छोडके भाडुत की तरह भागे ।
19. विपलिकुंचित - थोडा वंदन करके बीच में बात करे ।
20. परिपिंडित - सभी साधुओ को एक साथ वंदन करे ।
21. टोलगति - तीड की तरह वंदन करते समय आगे चले व पीछे से कूदे ।
22. कच्छपरिंगित - वंदन सूत्र को उच्चारते समय कछुअे की तरह आगे पीछे खीसकते हुए वंदन करे ।
23. मत्स्योध्धृत - अेक साधु को वंदन करके शीध्र धूमकर वही बैठे बैठे दूसरे साधु को वंदन करे ।
24. वेदिकाबध्ध - दो हाथ के बीच में अेक घुंटण - ढींचण रखकर वंदन करे ।
25. अंकुश - वंदनीय साधु का वस्त्र खीचकर आसन पर ले जाय अथवा रजोहरण को अंकुश की तरह पकडे ।
26. चुडलीक - उंबाडीया की तरह रजोहरण घुमाते हुए वंदन करे ।
27. शृंग दोष - अहों कायं आदि आवर्त कपाल के बीच करने के बजाय आस पास में करे ।

28. आश्लिष्टानाश्लिष्ट - वंदन करते समय ओघा को अथवा मस्तक को अंगुल का स्पर्श न करे ।

29. न्यून - वंदन के सूत्र अक्षर पद अथवा वाक्य न्यून आधा बोलकर वंदन करे।

30. उत्तर चूड - वंदन करने के बाद बडे अवाज से मत्थएण वंदामि बोले।

31. मूकदोष - मन में वंदन के सूत्र बोले ।

32. ढड्ढर दोष - बडे अवाज से सूत्र बोलकर वंदन करे ।

।। वंदन से प्राप्त होने वाले छ गुण ।।

(1) गुरु का विनय
(2) मान का नाश
(3) गुरू पूजन
(4) तीर्थंकर की आज्ञा पालन
(5) श्रुतधर्म की आराधना
(6) मोक्ष की प्राप्ति

।। वंदन नहि करने से प्राप्त होते छ दोष ।।

(1) अभिमान की वृध्धि
(2) अविनय
(3) तिरस्कार
(4) नीच गोत्र का बंध
(5) अबोधी-बोधी दुर्लभता
(6) संसार वृद्धि

।। गुरू स्थापना दो प्रकार की ।।

1. सदाकालीन- शास्त्रोक्त विधिपूर्वक अक्ष में गुरु महाराजकी की हुई प्रतिष्ठा, साधु भगवंत के स्थापनाचार्य ।

2. अल्पकालीन - गुरु के विरह में ज्ञान-दर्शन चारित्र का कोईभी (साधन) उपकरण सामने रखके **नवकार पंचिदिय** सूत्र बोल के गुरु की स्थापना करनी।

जैन धर्म में कोई भी क्रिया साक्षात् गुरु या गुरु के विरह में उनकी स्थापना करके करने में आती है, गुरु की साक्षी में क्रिया करने से स्थिरता व उल्लास प्रगट होता है ।

अवग्रह (मर्यादा)

गुरुसे साडातीन हाथ दूर बेठना चाहिए । विजातीय की अपेक्षा 13 हाथ दूर रहना चाहिए । पास में बेठने से, छींक, खांसी आदि से आशातना होती है ।

स्थान – 6

(1) `ईच्छामि खामासमणो निसिहियाए' से वंदन की इच्छा बताना ।
(2) `अणुजाणह मे मिउग्गहं' से गुरु के अवग्रह में प्रवेश करने के लिए आज्ञा प्राप्त करनी ।
(3) `बहु सुभेण भें दिवसो वईक्कंतो' वंदन करते समय गुरु को सुखशाता पूछना (अव्याबाध)
(4) जत्ता भे जवणि ज्जंचभे से सुखपूर्वक आपकी संयमयात्रा चलती है ? एसा गुरु को पूछना (यात्रा)
(5) खामेमि खामसमणो से आपके शरीर को समाधि है ? एसा पूछना (यापना)
(6) अपराध क्षामणा - खामेमि खामासमणो देवसियं वईक्कमं सूत्र से दिन अथवा रात में जो अपराध (गलती) हुई है उसकी क्षमापना ।
० द्वादशावर्त वंदन गुरु को करते समय ये छ स्थान (छ अधिकार) आते है ।

गुरुवचन – 6

(1) छंदेण - जैसा तुम्हारा अभिप्राय - ईच्छा (गुरु शांत बैठे होय तब छंदेण बोले)
(2) अणुजाणामि - में तुमको अवग्रह में प्रवेश करने की आज्ञा देता हुँ ।
(3) तहत्ति - हमारा दिन समाधियुक्त पूर्ण हुआ है ।
(4) तुब्भंपि वट्टए - तुम सुखशाता में हो ?
(5) एवं - शरीर की सुखशाता है ।
(6) अहमवि खामेमि तुमं - में भी तुमको क्षमापना करता खमाता हुं ।
० शिष्यो की विनय पद्धति व गुरु की कितनी बडी उदारता ईधर देखने को मिलती है ।

गुरु की तेत्तीस आशातना

1. गुरु के आगे चलना
2. गुरु के पीछे चलना
3. गुरु के पास में चलना
4. गुरु के आगे खडा रहना
5. गुरु के पास खडा रहना
6. गुरु के पीछे खडा रहना
7. गुरु के आगे बेठना
8. गुरु के पास एक पंक्ति में बैठना
9. गुरु के पीछे बेठना
10. गुरु के संथारा-आसन पर पैर लगाना
11. गुरु के संथारा - आसन पर सोना
12. गुरु के संथारा - आसन पर बैठना
13. गुरु के साथ स्थंडिल भूमि जाय तब गुरु के पहले आचमन करके (पांव धोना) ।
14. गुरु के पहले इरियावहि करे ।
15. गौचरी लाने के बाद दूसरे साधु के पास आलोचे ।
16. गौचरी लाकर दूसरे साधु को बतावें ।
17. गौचरी लाने के बाद प्रथम दूसरे साधु को निमंत्रण करे बाद में गुरुको।
18. खद्धदान - गुरु की आज्ञा बिना दूसरे साधु को गौचरी दें।
19. खद्धादान - गुरु को कम देकर अच्छी गौचरी स्वयं करे ।
20. अप्रतिश्रवण - दिन को गुरु बुलावे तो भी प्रत्युत्तर न देवे।
21. अप्रतिश्रवण - रात को कौन जागृत है ? एसा गुरु बोले तो भी स्वयं जागृत है, लेकिन बोले नहिं ।
22. खद्धभाषण - बडे आवाज से गुरु के साथ कर्कश वार्तालाप करे ।
23. तत्र गतः - गुरु बुलावे तब मत्थएण वंदामि बोलकर वहां जाने के बजाय अपने आसन पर बैठा बैठाहि उत्तर देवें ।
24. कि भाषण - गुरु कुछ कहे तब ``क्या है ?'' एसा बोले लेकिन आज्ञा फरमाइअे एसा न बोले ।

25. तुं - गुरु को मान देकर न बुलावे, लेकिन तुमे-तुम्हारे क्या काम है, एसा कहकर बुलावे ।

26. तज्जात - गुरु कहे तुम भक्ति क्यों नहिं करते हो ? तब सामने बोले कि तुम भक्ति क्यों नहि करते हो ?

27. नोसुमन - अहो ! आपने अच्छा प्रवचन दिया, अच्छी वाचना दी एसा बोलने के बजाये मन में दु:खी होवे ।

28. नोस्मरण - क्या इसका भी अर्थ नहि आता है, एसा गुरु को बोले।

29. परिषद्भेद - प्रवचन के समय श्रोता गण सुनने में तल्लीन हुए हो, तब वहां जाकर एसा बोले कि कहा तक चालु रखना है?

30. कथाभेद - फिर श्रोतागण को कहें कि में तुमकों अच्छी तरह समझाउंगा।

31. अनुत्थित कथा - गुरु चले जाने के बाद स्वयं अपनी हुंशीयारी से विस्तार से समजावे ।

32. पुव्वालवणे - जो कोई भी श्रावक गुरु को मिलने आया है, तो उनके साथ पहले से जाकर बातचीत करे ।

33. उच्चासणे - गुरु के आगे उच्च / एक समान आसन पर बैठे। आशातना अर्थात एक प्रकार का अविनय ।

लोकोत्तर मार्ग को प्राप्त किये हुए जीवो में जगत के दूसरे जीवो की अपेक्षा से उच्च कोटी का विनय - मर्यादा चाहिए ।

विशेष - केवल मस्तक नमाकर नमस्कार करना । उसे फेटा वंदन कहते है ।

○ दो पंचांग खमासमण देकर अब्भुदि्ठओ खामना उसे छोभ वंदन कहते है ।

○ तीसरा द्वादशावर्त वदंन

○ फेटावंदन समस्त संघ परस्पर कर सकता है ।

○ छोभवंदन पंचमहाव्रतधारी साधु साध्वी को होता हे ।

○ तीसरा द्वादशावर्त वंदन पदस्थो को होता है ।

सुबह व शाम के प्रतिक्रमण की संक्षिप्त विधि

- सुबह की विधि -

○ प्रथम इरियावही करके कुसुमिण दुसुमिण का चार लोगस्स का काउसग्ग करना ।

○ फिर जगचिंतामणी से जयवीयराय तक चैत्यवंदन करना ।

○ फिर मुहपत्ति बाद में वांदणा ।

○ फिर इच्छा. संदिसह भगवन् राईअं आलोउं ईच्छं कहकर जोमे राइओ अइयारो कओ । सूत्र बोलना । बाद में वांदणा देना ।

○ फिर अब्भुट्ठिओ खामना । बाद में वांदणा और पच्चक्खाण।

○ फिर चार खमासमणा - भगवानहं आदि ।

○ फिर सज्झाय के दो आदेश लेकर सज्झाय करना ।

○ शाम की प्रतिक्रमण की संक्षिप्त विधि ○

- प्रथम इरियावहि करने के बाद चैत्यवंदन करके मुहपत्ति पडिलेवे ।

- फिर दो वांदणा देना । उसके बाद दिवसचरिम का पच्चक्खाण करना। फिर वापिस वांदणा देना ।

- फिर इच्छा. ``संदिसहं भगवन् देवसिअं आलोउं इच्छं'' कहकर जो में देवसिओ सूत्र बोलना बाद में वांदणा देकर अब्भुट्ठिओ खामना, फिर चार खमासमणा देना भगवानहं आदि ।

- बाद में देवसिअ पायच्छित्त का चार लोगस्स का काउसग्ग करना है ।

- फिर सज्झाय के दो आदेश लेकर सज्झाय करना ।

पच्चक्खाण भाष्य

○ दस प्रकार के पच्चक्खाण

1. अनागत - गुरु सेवा भक्ति व ग्लान साधु की सेवा आदि के कारण से बाद में करने का तप पूर्व में कर ले, जैसे संवच्छरी का अट्ठम पजुसण के पहले करना.

2. अतीत - उपर लिखे हुए कारणो से पहले करने का तप बाद में करे जैसे संवच्छरी का अट्ठम पजुसण के बाद करे.

3. कोटी सहित - उपवास के पारणे के दिन पुनः उपवास करे ।

4. नियंत्रित - किसी भी प्रकार की परिस्थिति में छठ अट्ठम करूगां एसी प्रतिज्ञा करनी ।

(ये तप जिनकल्पी अथवा चौदपूर्व धारीओ के समय में प्रथम संघयण वाले को होता है ।)

5. अनागार - जिस पच्चक्खाण में अनाभोग व सहसागार केवल दो आगार खुले हो ।

6. सागार - जिस पच्चक्खाण में अनाभोग सहसागार इत्यादि सभी आगार खुल्ले हो ।

7. परिमाणकृत - जिसमें दत्ती, कवल, घर, द्रव्य, दाता आदि का परिमाण (प्रमाण) तय करना ।

8. निरवशेष - जिसमें चारो आहार का त्याग होता है ।

(अशन - पान - खादिम - स्वादिम)

9. संकेत - मुठ्ठिसी - गंठसी, पाणी का बिंदु, वींटी, दीप की ज्योत इत्यादि की धारणा करके पच्चक्खाण करना ।

जैसे कपडे पर दी हुई गांठ छोडु नहिं, तब तक चार आहार का त्याग, दीप की ज्योत जब तक बुझे नहि, तब तक चार आहार का त्याग ।

10. अध्धा - काल पच्चक्खाण, नवकारशी, पोरसी, साढपोरसी आदि का पच्चक्खाण करना ।

अध्धा पच्चक्खाण के 10 प्रकार

(1) नवकारशी - सूर्योदय से 48 मिनिट तक आहार पाणी का त्याग ।

(2) पोरसी - सूर्योदय से 1 पहर तक आहार पाणी का त्याग ।

(3) पुरिमड्ढ - सूर्योदय से 2 पहर बाद (आधा दिन जाने के बाद) ये पच्चक्खाण आता है ।

(4) अेकासणा - दिन में अेक बार अेकही जगह पर बैठके सचित का त्याग करके भोजन करना उसमें भोजन के बाद केवल गरम पाणी पीया जाता है ।

(5) अेकलठाणा - भोजन करते समय बांया हांथ व मुंख बिना दूसरा कोई भी अंग हिलाना नहिं चाहिए, दूसरा सभी अेकासण की तरह, इसमें बादमें पाणी नहि पी संकते ।

(6) आयंबिल - जिसमें दूध, दही, गुड, खांड, तेल, मिष्टान्न, लीली सब्जी आदि का त्याग होता है । केवल पाणी से तैयार किया हुआ अनाज व कठोल आदि दिन में अेक बार अेक जगह बैठकर खा सकते है । पान, लीडीपीपर, सोपारी इत्यादि बिल्कुल बंध ।

(7) उपवास - चोविहार उपवास में चारे आहार का त्याग व तिविहार उपवास में पाणी की छूट. (जैन धर्म के उपवास में पूरे दिन व पूरी रात तक कुछ भी खाने का नहि होता है ।)

उपवास करने से पाप व विकार वासना दूर होती है शारीरिक रोग दूर होता है मानसिक शांति होती है आत्मा को अणहारी स्वभाव का स्वाद मिलता है ।

(8) दिवस चरिम - शाम को भोजन करने के बाद जो रात में पाणी की छूट रखता है, उसे तिविहार व पाणी का भी त्याग करता है, उसे चोविहार कहते है ।

(9) अभिग्रह पच्चक्खाण - किसी भी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का नियम ग्रहण करना ।

(10) विगई त्याग - घी, दूध, दही, तेल, कढा विगई -कढाई में तलकर बनाए हुअे पदार्थ व गुड, ये छ प्रकार की विगई है, हंमेशा अपनी यथाशक्ति से 1-2-3-4-5-6 विगई का त्याग करना ।

(विगई को छोडने वाला ब्रह्मचर्य का पालन अच्छी तरह आसानी से कर सकता है)

चार प्रकार की पच्चक्खाण उच्चार विधि

(1) गुरु महाराज पच्चक्खाण देते समय पच्चक्खाई शब्द बोले

(2) तब पच्चक्खाण लेने वाला पच्चक्खामि शब्द बोले ।

(3) जब पच्चक्खाण देते समय वोसिरई शब्द बोले ।

(4) तब पच्चक्खाण लेने वाला वोसिरामि शब्द बोलें ।

विशेष - अपने मनमें जो पच्चक्खाण धार लीया है, वो ही प्रमाण बनता है, कीसी ने उपवास के बदले में आंबिल का पच्चक्खाण दे दिया, तो उपवास का ही प्रमाण माना जायेगा ।

चार प्रकार के आहार

(1) अशन - मूंग, अडद आदि कठोल, घऊं, बाजरी, चावल आदि अनाज दूध, दही, राबडी, मिष्ठान आदि जिससे भूख शांत होती है, उसे अशन कहते है ।

(2) पान - छास की आश, जव का पाणी, चावल आदि का धोवण/ प्रक्षालन, फल आदि का पाणी, शुध्ध पाणी ये सब पान में आता है ।

(3) खादिम - जो चीज खाने से पेट नहि भरता है, केवल मन को संतोष होता है, उसे खादिम कहते है, जैसे खजूर, खारेक, नालियेर, सुकामेवा, चणा, ममरा इत्यादि ।

(4) स्वादिम - जिस चीज से केवल स्वाद का अनुभव होता है उसेस्वादिम कहते है, जैसे अेलची, लविंग, केशर, सोपारी, वरीयाली, तज, सूंठ, मरी, जीरूं इत्यादि ।

अणाहारी चीज - गोमूत्र, गलो, कडु करियातु, अतिविष, राख, हलदर, त्रिफला, अेलीओ. गुगल, कस्तुरी, अंबर आदि कारण से ये चीज उपवास में व रात को भी ले सकते है ।

आगार का अर्थ

अणत्थणाभोगेणं - यदि भूल से पाणी अथवा खाने की चीज मुंह में डाल दी, याद आने के बाद तुरंत थुंक दिया, तो उससे पच्चक्खाण भंग नहि होता है ।

सहसागारेणं - सहसा - अचानक अपने मुंह में कोई चीज आ पडे तो पच्चक्खाण का भंग नहि होता है ।

पच्छन्नकालेणं - सूरज बादल से ढंक गया हो और पोरसी आदि पच्चक्खाण पारे, मुंह में कुछ डाल दे व पीछे से सूरज दिखे तो भी भंग नहि होता है।

दिसा मोहेणं - पूर्व दिशा को पश्चिम मानकर पच्चक्खाण पारे तो भंग नहिं।

साहूवयणेणं - साधु का `` बहुपडिपुन्ना पोरसी '' का वचन सुनकर पोरसी का पच्चक्खाण पारे तो भंग नहिं । सब जगह सत्य ज्ञात होने पर खाना पीना बंध कर देना चाहिए अन्यथा पच्चक्खाण का भंग होता है ।

महत्तरागारेणं - कोई खास/विशेष कारण संघ का अथवा शासन के कार्य के लिए पच्चक्खाण समय पूर्व पारे तो भी भंग नहिं ।

सव्वसमाहि वत्तियागारेणं - तीव्र शूल की वेदना हो अथवा सर्प आदि झेरी जन्तु काटा हो व आर्तध्यान चालू हो तब औषध आदि ले तो भंग नहिं।

आउंटण पसारेणं - हाथ पैर को लम्बा- करे फेलावे तो भंग नहिं। ((वायु) आदि के कारण से पांव जकड जाते है, इसलिए ये छूट दी है)

गुरु अब्भुट्ठाणेणं - गुरु महाराज आचार्यआदि आवे तो एकासणा आदि करते उठे तो भंग नहिं ।

पारिट्ठावणियागारेणं - विधिपूर्वक लायी हुई गोचरी वापरने के बाद बढ जाये, तो गीतार्थ की आज्ञा से तिविहार उपवास या छठ तपवाले वापरे तो भंग नहि । (अभी चोविहार उपवास वाले को यह आगार नहि दिया जाता है)

पडुच्चमक्खिएणं - रोटी आदि को कोमल बनाने के लिए गृहस्थ ने घी अथवा तेल का हाथ लोट को लगाया हो एसी अल्प लेपकृत रोटी नीवी के पच्चक्खाणवाले को खपें / काम में ले सकते है ।

तिविहार के पच्चक्खाण में शुद्ध पाणी न मिले तो दूसरा पाणी काम आता है उनके छ आगार ।

(1) लेवेण - खजूर आदि का पाणी चीकना होने से लेपकृत है।

(2) अलेवेण - कांजी का पाणी, छाश की आश, जव का पाणी चिकाश बिना का होने से अलेपकृत है ।

(3) अच्छेण - शुद्ध पाणी अथवा फल आदि का अचित्त पाणी।

(4) बहुलेवेण - चावल या तलादि धोवण का पाणी ।

(5) ससित्थेण - दाणा से युक्त ओसामण का पाणी ।

(6) असित्थेण - दाणा बिना का ओसामण का पाणी ।

अट्ठम अथवा अट्ठम उपर के तप में शुद्ध पाणी काम आता है, दूसरा नहिं ।

।। दूध के पांच निवियाते ।।

(1) बासुंदी (2) खीर (3) दूधपाक

(4) अवहेलिका - (चावल के आटा युक्त बनाया हुआ दूध)

(5) दुग्धाटी (कांजी आदि खाद्य पदार्थ से युक्त बनाया हुआ दूध)

।। दहीं के पांच निवियाते ।।

1. करंब - दहीं से युक्त चावलवाला दहीं
2. शीखंड 3. सलवण
4. घोल - वस्त्र से छाना हुआ दही (खांड डालके)
5. घोलवडा - गरम कीये हुए दहीं में वडे डालकर बनाया जाता है । (अपनी अंगुली जल जाये एसा दहीं गरम करना)

।। घी के पांच निवियाते ।।

1. निभंजन - पक्वान आदि से पका हुआ घी ।

2. विस्पंदन - दहीं का तर व लोट ये दोनो से युक्त बनायी हुई कुलेर।
3. पक्वौषधितरित - औषधि (वनस्पति विशेष) डालकर उबाले घी उपर की तर ।
4. किट्टि - उबाले घी पर जो मेल तरकर कचरा उपर आता है, उसे किट्टि कहते है ।
5. पक्वघृत - आमला आदि औषधि डालकर उबाला हुआ घी, उसे पक्वघृत कहते है ।

।। तेल के पांच निवियाते ।।

1. तिलकुट्टि - तल तथा कठीन गुड को खांडणी में इक्कट्ठा करके कूटकर एकरस बनाना । (उबाले हुए गुड के रस में बनायी हुई तल की सुखडी नीवी में काम आती है ।)
2. निभञ्जन - पकवान तल जाने के बाद कढाई में जला हुआ अथवा पुरी आदि तल जाने के बाद बढा हुआ तेल उसे निर्भञ्जन कहते है ।
3. पक्वतेल - औषधि डालकर उबाला हुआ तेल ।
4. पक्वोषधितरित - औषधि डालकर उबाला हुआ तेल पर जो तर आती है ।
5. किट्टि - उबला हुआ तेल का मल ।

।। गुड के पांच निवियाते ।।

1. साकर - जो कांकरे जैसी होती है (साकर के गांगडे)
2. गुलवाँणी - उबालकर तैयार किया हुआ इक्षु गुड का पाणी जो पुडा आदि के साथ खाया जाता है।
3. पक्कागुड - उबालकर किया हुआ पक्का गुड जो खाजा आदि के उपर लेप करने में आता है (गुड की चासणी)
4. सभी प्रकार की शक्कर
5. आधा उबाला हुआ शेरडी/इक्षु का रस । जिस को अर्ध क्वथित इक्षु रस कहते है ।

पकवान के पांच निवियाते ।

1. दूसरा पुडला - तवी या कढाई में आ सके एसा बडा एक मालपुडा तलकर निकाल के उसी घी में अथवा तेल में तला हुआ दूसरा पुडला निवियाता है ।

2. चोथा घाण - तीन घाण निकालने के बाद चोथे-पांचमे घाण की पुरी आदि निवियाती है ।

3. गुडधाणी - गुड का पाया करके उसमें युक्त की गई धाणी या धाणी के लड्डू निवियाते है ।

4. जल लापसी - तलने के बाद बचा हुआ घी निकालकर कढाई में रही हुई चिकाश को दूर करने के लिए घउं का जाडा लोट सेक कर गुड का पाणी डालकर दाणावाला शीरा / कंसार बनाये वो ।

5. पोतकृत पुडला - तवी पर तेल या घी का पोता देकर बनाया हुआ पोताया निवियाते नीवीमें खा सकते है ।

○ मदिरा मध मांस व मक्खन में उसी वर्ण के अनेक त्रस-जंतु की व अनंत स्थावर जंतु की उत्पत्ति होती है, इसके भक्षण में बहोत ही हिंसा होती है, इसलिए इसका सर्वथा त्याग करना चाहिए ।

छ प्रकार की पच्चक्खाण शुद्धि

1. फासियं - स्पर्श किया, अनंत तीर्थंकरो ने ये पच्चक्खाण बताया है, इस पच्चक्खाण से मेरा आत्म कल्याण होगा, पाप को रोकता हुआ एसा जो विरति का परिणाम उससे स्पर्श किया । एसे परिणाम के साथ विधि पूर्वक पच्चक्खाण ग्रहण करना ।

2. पालियं - पच्चक्खाण करने के बाद बारबार संभाल कर याद करना बराबर पालन करना ।

3. सोहियं - गुरु को देने के बाद बचा हुआ वापरना ।

4. तिरियं - पच्चक्खाण पारने का समय हो गया हो, तो भी पांच मिनिट अर्थात थोडे समय के बाद पारना ।

5. किट्टीयं - भोजन करते समय फिर से पच्चक्खाण को याद करना। जैसे - मेरे आज आंबिल का पच्चक्खाण है, मैं अभी पार रहा हूं।
6. आराहियं - उपर बतायी हुई पांच शुद्धि को याद करके लीया हुआ पच्चक्खाण बराबर पारा-आराधा एसा विचार करना।

दूसरी रीत से छ शुद्धि

1. **श्रद्धाशुद्धि** - शास्त्र में बताये हुए पच्चकखाण पर श्रद्धा रखना। विधि सत्य है, पच्चक्खाण करना चाहिए, मेंने किया वो अच्छा किया है।
2. **ज्ञान शुद्धि** - पच्चक्खाण का अर्थ, विधि, आगार, प्रकार आदि को जानकर पच्चक्खाण करना।
3. **विनय शुद्धि** - गुरु महाराज को विधिपूर्वक वंदन करके पच्चक्खाण लेना।
4. **अनुभाषण शुद्धि** - गुरु पच्चक्खाण दे तब अपने मनमें वो पच्चक्खाण बोलना। जिससे उपयोग रहे कि मेंने यह पच्चक्खाण किया है।
5. **अनुपालन शुद्धि** - पच्चक्खाण करने के बाद कितनी भी तकलीफ पडे तो भी पच्चक्खाण का भंग करे नहि, ली हुई प्रतिज्ञा प्राणान्ते भी तोडे नहि।
6. **भाव शुद्धि** - में उपवास, छठ, अठाई, मासखमण आदि करुंगा तो लोक मेरी पूजा करेंगे। मेरी प्रतिष्ठा बढेगी। मेरी तपस्वी की छाप पडेगी। परलोक में देवेन्द्र बनुंगा एसी एहिक या पारलोकिक इच्छा का त्याग करके जन्म मरण का नाश करके मोक्ष में जाने के लिए पच्चक्खाण करना। क्रोध से किया हुआ पच्चक्खाण निष्फल जाता है।

परिशिष्ट

कर्म का विश्लेषण - विभागी करण

1/2. **मतिज्ञान / श्रुवज्ञान -** सामने रहे हुए पदार्थ का साक्षात्कार करना वह मतिज्ञान । बादमें इस पदार्थ को घट कहते है । अथवा घट शब्द सुनते जो घट पदार्थ का ज्ञान एसे ज्ञान को श्रुतज्ञान कहते है । हमको कोई इशारा करे तब यह मुंह में अंगुठा डाल रहा है इत्यादि इशारे का ज्ञान मतिज्ञान होता है, लेकिन उन इशारों के अनुसार जो संकेत ज्ञान होता है - जैसे कि वह पाणी पीने की इच्छा रखता है इत्यादि ज्ञान श्रुतज्ञान है, मतिज्ञान में शब्द व संकेत के स्मरणकी तथा उपयोग की आवश्यकता नहि रहती । मगर श्रुतज्ञान में रहती है ।

3. **अवधिज्ञान -** मर्यादानुसार बंध आंखो से पदार्थो को साक्षात् देखे जा सकते है, रात में अंधेरा उसे दिखाई देता है । साथ में उनके नीचे रहे हुए पदार्थ की जानकारी भी वह प्राप्त कर सकता है ।

4. **मनः पर्यवज्ञान -** मनो वर्गणा को साक्षात् करता है जैसेहम खुद की मनोवर्गणा से निर्मित चित्र देखते उसी प्रकार वह देखता, बाद वर्गणा के अनुसार विचार के विषय का अनुमान करता है ।

यहां पहले से हि आकार विशिष्ट का साक्षात्कार होने से दर्शन का भेद नहिं बनता ।

5. **केवलज्ञान -** तीनो काल के हर पदार्थ के जो पर्याय बनते उन सबका ज्ञान; जैसे यह मिट्टी का पिण्ड पूर्व में किस किस रूप में था और आगे कैसे परिवर्तन को प्राप्त करेगा उन सब बातो का ज्ञान ।

इन को रोकने वाले कर्म को मतिज्ञानावरणीय इत्यादि कहते है ।

निद्रा - हम जो नींद लेते है, उसमें यह कर्म निमित्त बनता है, क्षयोपशम से प्राप्त थोडा बहोत ज्ञान दर्शन वह सब निद्रा वश रूक जाता है ।

थीणद्धि - दिन में चिंतित कर्म पूर्ण न होने से रात को निद्रा वश में उठ कर उस कार्य को करना । जैसे अमेरिका में अेक व्यक्ति ने इमारत को कूदा फिर शयन में लेट गया । हकीकत में काम करने पर भी उसे एसा महसूस होताहै कि जाने कोई सपना आया ।

इस प्रकार दर्शन को रोकने वाले कर्म का दर्शनावरणीयमें समावेश होता है ।

वेदनीय - मन वचन काया के अनुकुल सामग्री प्राप्त करना जैसे जिससे अपने मन को संतोष हो एसे स्वभाव वाले व्यक्ति का मिलन होना । जो वचन आनंद देने वाला हो, सुंदर ढंग से पांव दबाने वाले व्यक्ति का। गर्मी दूर करने वाले A.C. का संयोग होना । इससे विपरीत परिस्थिति खडी करनेवाला आशाता वेदनीय कर्म है ।

मोहनीय कर्म - मुख्य दो भेद - दर्शन मो. / चारित्र मो

दर्शन मोहनीय - मिथ्यात्व / मिश्र/ समकित मो. तीन भेद है, मिथ्यात्व में जो महामिथ्यात्वी होता है उसे जिन प्रवचन में बिल्कुल श्रद्धा नहिं होती उसे समजाने पर मश्करी / उपहास करता है और संसार सुख में हि लयलीन रहता है, उसे भवाभिनंदी / दुर्भव्य भी कहते है ।

मंद मिथ्यात्वी - अब तक मिथ्यात्व का उदय है लेकिन उसे दया परोपकार की भावना होती है, संसार में गहरी/बडी रूचि नहिं होती । कृतज्ञ होता है अर्थात् समकित के मार्ग में आया नहीं है, लेकिन व जिस रस्ते पर चल रहा उससे वह समकित प्राप्त कर सकता है । उसे मार्गानुसारी / मार्ग पतित/ अपुनबंधक भी कहते है ।

मिश्र - जिन भाषित पदार्थ में राग द्वेष रहित वृत्ति का होना ।

समकित - जिन भाषित पदार्थ में रूचि होना, मगर एक भी पदार्थ में अरूचि रखे तो वह मिथ्यात्वी है जैसे - जमाली । परंतु जिसे ज्ञानावरण के वश गहन पदार्थ समजमें न आवे तो भी ``जो जिनेश्वर ने कहा है वही

सच है'', एसी मनमें अटल श्रद्धा हो तो उसे समकित कह सकते है । इसलिये तो पदार्थ में विपरीत ज्ञान वाला भी समकित का मालिक बन सकता है । जैसे आत्मा मरती नहि है अतः अमर है अैसा विपरीत ज्ञान हुआ, लेकिन वह तो यह ही मानता है में जिन मार्ग पर चल रहा हुं । इतना अवश्य कह सकते है कि उसे कोई समजाने वाला मिले तो वह अपनी बात का कदाग्रह नहिं रखता । इसी कारण अन्य मार्ग के प्रणेता के अलावा उसके अनुयायीओ में समकित की संभावना की गई है ।

चारित्र मोहनीय - क्रोधादि कषाय का उदय समकित आदि आत्मिक गुण को प्राप्त करने नहिं देता । विषयकषाय में अल्प रूचि वाला, सुंदर क्रिया कारी अल्प संसारी होता है ।

यदि ऐसे क्रोधादि की मात्रा 15 दिन तक रहे तो संज्वलन उससे ज्यादा 6 महीना तक रहेतो प्रत्याख्यानी 12 महीने अप्रत्याख्यानी उससे ज्यादा रहे तो उसे अनंतानुबंधी कषाय कहते है, जैसे किसीके साथ झघडा हुआ फिर 12 महीने तक उसके प्रति वैर भाव रखा, उसी प्रकार इष्ट वस्तु पर 12 महीने तक राग भाव रखा यह अनंतानुबंधी का प्रभाव है ।

आयुष्य - एक आयुष्य का उदय हंमेशा रहता है, यदि सोपक्रम के कारण आयुष्य जल्दी / शीघ्रपूर्ण होने वालीहोती है तो शीघ्र ही नया आयु बांध लेता है ।

नाम कर्म - दुनिया में जो कुछ भी विविधता पाई जाती है, उसमें नाम कर्म का बडा नाम है । रंग दोरंगी फूलो का सर्जन ठिंगूजी से लेकर लम्बू का भेद, खुब सूरत से खूब भयंकर इन सबके लिये भिन्न जाति के नाम कर्म काम करते है । तीर्थंकर बनने का नाम कर्म होता हैतो तो डकैति डालने वाले का भी नाम कर्म होता है । सूर्य में गर्मी आतप व चन्द्र में सौम्यता उद्योत नाम कर्म की बलीहारी है । कीसी को यश और किसी को जुत्ते मिलते

है उसमें यश अपयश नाम कर्म भाग लेते है ।

आदेय नाम कर्म से ग्राह्य वचन वाला, अनादेय से धिक्कार पात्र बनता है, सुस्वर के उदय से कोयल सा कंठ और दुस्वर से कौअे सा कर्कश अवाज प्राप्त होता है ।

स्वर्ग में दिव्य शरीर की प्राप्ति देवगति से / पशुपक्षी का अवतार तिर्यञ्च गति से / मनुष्य देह की प्राप्ति मनुष्य गति से और नरक की आतंक/ पीडा शरीर की प्राप्ति नरक गति से होती है ।

शंकाकार - नरक स्वर्ग प्रत्यक्ष न दिखने से मानना अयोग्य है ?

समाधान - 'जैसा कार्य करे वेसा फल दे भगवान' इस न्याय से यदि एकबार खून करने से उसके मौत की सजा निश्चित हो जाती है, पुनः पुनः खून करने वाले की क्या गति होगी मनुष्य की तो एक बार हि मृत्यु संभवित तो फिरआगे के दंड का भुगतान कहां करेगा ? बस उसके लिऐ सतत दुःखदायी पुनः पुनः शरीर भेदन छेदन जहां होता है एसा कोई भव-अवतार होना चाहिऐ वही है नरक गति ।

स्वर्ग - उसी प्रकार रात दिन धर्म ध्यान करने वाले व्यक्ति को सुख सातत्य मिलना चाहिऐ, मृत्यु लोक में तो धनवान भी अनेक दुःखो से पीडीत होते है । एक दर्द मिटा न मिटा उतने में दूसरा दर्द उगने लगता है अतः उस पुण्य के भुगतान के लिये निरंतर सुख देने वाली गति अवश्य होनी चाहिये वही है स्वर्ग गति ।

आपघात, खून के किस्सो में जो व्यक्ति सरल तपस्वी मरते समय शुभ भावना वाला होता है, वह व्यंतर योनि को प्राप्त करता है । जिसे हम भूत प्रेत रूप में जानते / मानते है ।

स्वर्ग में भी जीव की उत्पत्ति मृत्युलोक से मृत्यु पाकर जीव स्वर्ग में उपपात सभा में रही हुई सेज उपर आत्मा जाती है और कुछ ही क्षणो में नोजुवान के रूप में आलस मरोडकर खडा हो जाता है और जीवनभर

उसी दशा में रहता है ।

नरक में जीव कुंभी में जा गीरता है और कुछ ही पल में शरीर परिपूर्ण / बडा हो जाता है । मगर कुंभी का मुह छोटा होने से परमाधामी शस्त्र के द्वारा टुकडे टुकडे करके बहार निकालते है, उस छेदन भेदन में मौत से भी तीव्रतम वेदना होती है मगर थोडी ही देर में पारे की तरह पुनः एक शरीर बन जाता है ।

गौत्र कर्म - उत्तम कुल में जन्म पाना उच्चगोत्र का उदय है जिससे अच्छे संस्कार - सन्मान आदि की प्राप्ति होती है, नीच कुल में पेदा होने वाले में अच्छे संयोग मिलने पर भी अपने जात की भात ज्यादा तोर से बता ही देता है ।

अन्तराय कर्म - दानांतराय - सामग्री मिलने पर भी दान न कर सके। लाभांतराय - दातार का संयोग मिलने पर भी जिसकी झोली खाली ही रहती है । भोगान्तराय - सामग्री मिलने पर भी भय या रोगादि कारण भुगतान न कर सके । उपभोगान्तराय - पुनः पुनः जिसका प्रयोग हो सके एसे वस्त्र स्त्री आदि का भुगतान न कर सके । वीर्यान्तराय - युवावस्था है कोई प्रतिबंध न होने पर भी शक्ति का उपयोग न कर सके । शक्ति की प्राप्ति न होवे । धार्मिक क्रिया में जितना प्रमाद (आलस) करते उतना कर्म चिकना बनता है । ओर बल लगाकर (मन मोडकर) सुंदर क्रिया करने से क्षयोपशम होता है । पांव दुःखने पर भी प्रतिक्रमण खडे खडे करने से भारी निर्जरा होती है ।

निर्जरा का संबध सहन शीलता के साथ भी है अतः जिस पाप के प्रायश्चित में चौमासे में अट्ठम आता है उसी के लिये गर्मी में 1 उपवास, धर्म सामग्री की प्राप्ति लाभांतर के क्षयोपशम से होती उसके द्वारा क्रिया करनेकी रूचि मोहनीय के क्षयोपशम से होती है ।

गुणस्थानक

1. **मिथ्यात्व** - अज्ञान में खासतोर पें आध्यात्मिक विपरीत ज्ञान में रूचि रखने की बात है, लेकिन भेड को बकरी कहने से समकिती जीव मिथ्यात्वी नहिं बन जाता। क्यों कि एसे अज्ञान का कारण मिथ्यात्व नहिं, बल्की ज्ञानावरणीय कर्म है। इस जगह रहे हुए व्यक्ति में भी दया। कृतज्ञता आदि गुण तो होते है अतः इसे भी गुणस्थानक कहते है। अथवा गुणस्थानक में सभी जीवो का समावेश करने लिये इसे गुणस्थानक संज्ञा दी है।

जिन प्रवचन व अन्य दर्शन में भी समान भाव रखना, वह एक प्रकार का मिथ्यात्व है। आज कल बहोत लोग एसा बोलते है कि हम तो सब धर्म को समान मानते है। मगर अमृत को विष समान मानना भूल है, क्यो कि वह मृत्यु शूल को पैदा करती है, उसी तरह एसी श्रद्धा हमें जैन दर्शन में द्रढ श्रद्धा से वंचित रखती जिससे जिनामृत हमारे हाथ से खिसक जाता है।

2. **सास्वादन** - समकित प्राप्त करने के बाद कषाय वश भाव से चलित होने पर भी थोडी देर तक मिथ्यात्व का उदय नहिं होता तब तक यह गुणस्थानक होता है। वोमिटिंग किये गये समकित का थोडा सा स्वाद रह जाने से सास्वादन कहते है।

3. **मिश्र** - जिन सिद्धान्त में रूचि अरूचि का अभाव, एसा भाव अंतमुहुर्त रहता है। बाद में वह मिथ्यात्वी / समकिती बनता है।

4. **अविरत सम्यग्द्रष्टि** - यहां पर रहा हुआ जीव मोक्ष को लक्ष्य बनाकर धार्मिक अनुष्टान करता है, संसारिक कृत्य करते हुए भी उसमें रूचि नहिं रखता, मगर आनंद की अनुभूति तो होती है। जैसे बच्चे को खिलाते आनंद आता है। मगर मन में अेक भाव पडा रहता है यह सब मेरा नहि है। यहां पर रहे मनु. तिर्यञ्च-देव का आयुष्य बांधते है। मगर यहां कोई

जीव विरती को प्राप्त नहिं कर सकता ।

5. **देशविरति** - आंशिक विरतिको भी प्राप्त कर सकता है, मगर दीक्षा की भावना होने पर भी चारित्र उसके हाथ में नहिं आता है ।

6. **प्रमत्त** - दीक्षा तो मिल गइ लेकिन आत्मा पूर्ण रुप से चारित्र से मिली नहिं, अतः बीच बीच में प्रमाद कर बैठता है ।

7. **अप्रमत्त** - जिनेश्वरने जिस प्रकार से क्रिया करने का कहा उसी प्रकार से क्रिया करने वाला / प्रमत्त अप्रमत्त के बीच पूर्व कोटि वर्ष तक झोला खाता रहता है । उसमें भी अप्रमत का काल अल्प है ।

8. **अपूर्वकरण** - पूर्व में जैसा न किया हो वैसा करने वाला आत्मा यहां होती है, यहां से जीव श्रेणी का आरंभ करता है और अल्प स्थिति व रस वाले कर्म बांधता है, लेकिन भवोपग्राही-विवक्षित भव में ले जाने वाले कर्म का बंध नहि करता.

9. **निवृत्ति करण** - परिणाम विशेष से ज्यादा कर्म की निर्जरा करता है । अंतकरण की क्रिया का प्रारंभ करता है, समयनुसार इस गुणस्थानक के जीव के परिणाम समान होते हे ।

10. **सूक्ष्मसंपराय** - निर्जरा करते करते जो सूक्ष्म लोभ बचा उसका उदय सत्ता वाला आत्मा यहां होता है ।

11. **उपशान्त छद्मस्थ वीतराग** - मोह की सभी प्रकृति जहां उपशान्त हो चूकी हो । जिससे आत्मा में थोडा सा भी राग द्वेष नहि रहता लेकिन उनकी आत्मा अभी तक छद्मस्थ है, यहां से आत्मा अवश्य गिरति है, मृत्यु पाने वाला अनुत्तरमें जाता है, और गुणस्थानक का काल पूर्ण होने से गिरता हुआ 6,4,1 गुणठाणे मे जाता है ।

12. **क्षीण मोह छद्मस्थ वीतराग** - यहां पर मोहनीय की सत्ता भी नहिं होती, यहां से आत्मा नीचे नहिं गिरती, मगर अंतर्मुहुर्त में ही केवलज्ञान प्राप्त करके हि रहती है ।

13. **सयोगी** - केवलज्ञान हो जाने से स्वयं कृतार्थ तो हो जाते है, अपनी आत्मा के लिये उन्हे कुछ भी करने की आवश्यकता नहि है, मगर देह

धर्म के अनुसार निर्दोष क्रिया स्वभाव रूप से करते है लेकिन कोई पूर्वापर का विचार को यहां अवकाश नहिं है, क्यो कि वे सम्पूर्ण ज्ञान के स्वामी है 'में एसा करुंगा तो एसा होगा' एसे विचार भविष्य की अज्ञानता का परिचय देती है केवली तो सब साक्षात् जानते है। लेकिन व्यवहार नय को सामने रखकर साधु योग्य क्रिया का पालन करते है।

14. **अयोगी** - एक भी योग का यहां प्रयोग नहि होता अ, इ, उ, ऋ, लृ ये पांच ह्स्वाक्षर के उच्चार प्रमाण समय में सभी कर्मो का नाशकर आत्मा सिद्ध गति को भेटती है।

सिद्धि गतिमें आत्मा स्वतंत्र रहती है, उसे शरीर का भी बन्धन नहिं रहता। किसी भी प्रकार की प्रवृत्ति करने की इच्छा का अभाव होने से उसके प्रतिकार रूप क्रिया करने की आवश्यकता नहि रहती। जैसे - जिसे आइस्क्रीम खाने की इच्छा ही नहि उसे उस इच्छा को शांत करने वाली प्रवृत्ति - आईस्क्रीम खरीदना/खाना इत्यादि क्रिया की आवश्यकता नहिं रहती अतः पर पदार्थ की अपेक्षा न रहने से सदा सुखी रहता है।

॥ क्षयोपशम विचारणा ॥

देशघाती स्पर्धको को उदय में लाकर क्षय करना और सर्वघाती स्पर्धको को दबाके रखना। अर्थात जितनी मात्रा में रस कम रहता है, उतना ही गुण प्रगट होता है, अभ्यास से क्षयोपशम बढता है, जैसे दो गाथा याद करने वाला बालक धीरे धीरे दस पंद्रह गाथा करने लगता है इस रीती से पैदा हुए गुणों को क्षयोपशमिक गुण कहते है।

कर्म के दो प्रकार है, घाती, अघाती, आत्म गुणो का घात करने वाले घाती व केवल शरीर आदि पर प्रभाव डालने वाले कर्म अघाती ज्ञानवरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, व अंतराय ये 4 घातीकर्म है, शेष 4 अघाती है।

कार्य के पांच कारण

1. **काल** - किसी भी कार्य की उत्पत्ति में काल की अपेक्षा रहती है । आम का बीज बोने के बाद हवा पानी का संयोग मिलने पर भी समय के पहले फलीभूत नहिं होता ।

2. **स्वभाव** - पदार्थ की तदरूप में परिवर्तित होने की योग्यता / जैसे उस आम बीज में आम के पेड रूप में होने की योग्यता थी, इसलिए आम का पेड बना, लेकिन उसमें से निंबका पेड न बना ।

3. **भवितव्यता** - निश्चित नामधारी द्रव्यादि का ही संयोग मिलना जैसे उस बीज को छगन पटेल के खेत में ही बोया गया और जिससे वह घटादार वृक्ष बना, उसकी छाया में साधु को विश्राम का अवसर मिला।

4. **कर्म** - अपने अपने कर्म के उदय / क्षयोपशमादि से ही कार्य बनता है, उस बीज के जीव में स्थावर नाम कर्म, वनस्पति उपधायक नामकर्म इत्यादि का उदय होने से ही वृक्ष बनता है ।

5. **पुरूषार्थ**- कार्य के लिये तदनुकूल प्रवृत्ति, उस बीज को बोने के बाद पाणी-प्रकाश आदि प्रदान करना, साथमें उस बीज जीव में अपने आत्म प्रदेश फेलाने की प्रवृति-होती रही वह पुरूषार्थ है!

यूका शय्यातर जटाधारी योगी का मीलना गौशाला के मुहमें से यूका शय्यातर शब्द निकलना ये सब भवितव्यता है .केवल ज्ञान के बाद का काल उसके लीये आया उसमें भी आत्मा का ही सहन करनेका स्वभाव है ओर अशाता वेदनीय कर्म का उदय तो मानना ही होगा! तेजो लेश्या शीखाने का प्रयत्न खुद वीर प्रभुने कीया था! इस प्रकार ५ हेतुका समवधान होनेसे तेजो लेश्या फेंकने का कार्य हुआ!

'' आत्मा में समकित कार्य की उत्पति में पांच कारण का समवधान''

काल-संसार से छुटने का अर्धपुदगल परावर्तन काल शेष रहता है, तभी ही जीव समकित प्राप्त करता हे! जैसे-कीसीको बाधा, सोगन लेने को

कहते है तब वह अपने को धन्य मानने की बजाय फस गया एसा मानता है!

स्वभाव-जो आत्मा मोक्ष जाने योग्य हे उसी को समकित्त मिलता है! हा उसमेंभी अपनी योग्यताके अनुसार ही समकित प्राप्त होता है! उसे तथा भवितव्यता कहते है!

3. **भवितव्यता**- निश्चित गुरू से ही उस ही वख्त उस ही क्षेत्र में समकित की प्राप्ति होना । पूर्व काल का दिन उससे अच्छा था वचन सुन्दर बोध दायक व गुरू भी बडे विद्वान थे मगर बोधि प्राप्त न हुई, दूसरे दिन न हि कोई एसा मोका था मगर सामान्य साधु के एक ही वचन से वह धर्म भावित बन गया, बस इसमें भवितव्यता काम करती है ।

4. **कर्म** - ज्ञानावरणीय / दर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम से वचन का बोध हुआ / मिथ्यात्व मोहनीय क्षयोपशम से वचन में रूचि पैदा हुई, लाभान्तराय के क्षयोपशम से एसा वचन सुनने को मिला और समकित गुण की प्राप्ति हुई ।

5. **पुरूषार्थ** - यदि समझने व सुनने का प्रयत्न नहि करता । गुरू के पास नहि जाता तो यह कार्य केसे बनता ? अर्थात् समझने विचारने का प्रयत्न किया वह पुरूषार्थ ही समकित प्राप्ति का कारण है ।

इसमें मुख्य कारण तो जिन वचन है, यदि इस दुनिया में जिनेश्वर ने शासन की स्थापना करके प्रवचन का प्रवाह न चलाया होता तो किसी भी व्यक्ति को समकित की भी प्राप्ति ही असंभवित बन जाती।

सभी कार्य का कर्ता हर्ता सर्व शक्तिमान इश्वर नामधारी कोई नहि है । क्यों कि वह जीवात्माओ को निष्कारण सुख दु:ख देता है तो उसमें राग देष मानने की आपत्ति आयेगी । यदि वह कर्मानुसार सुख दु:ख का जीवात्मा में सर्जन करता है, एसा माने तो फिर ईश्वर की सर्व मालिकी कहां रही ? इससे अच्छा तो कर्म को हि सभी विचित्रता का कारण मानना ठीक है ।

फूलो में रंग/महक व रत्न में कान्ति आदि जीवगृहित शरीर से

बनती है, तथा पुद्‌गल का भी एसा स्वभाव है कि वह विस्त्रसा परिणाम से भिन्न रूप धारण करता/रहता है और साथ में लोक स्थिति भी काम करती है जैसे - सूर्य चन्द्र आदि का भ्रमण /निराधार रहना । मेरू आदि शाश्वत पदार्थ का एक रूप में रहना । अर्थात् जीव में विचित्रता कर्म सेऔर पुदगल में जीव कृत प्रयोग अथवा स्व परिणाम, द्वारा भिन्न भिन्न कार्य दिखाई देते है, उनके लिए इश्वर नाम की कोई दैवी द्वरा व्यक्ति मानने की जरूरत नहिं है ।

आज से सो साल पहले १८९३ में **चिकागो** धर्म सभा में इश्वर वाद का खंडन करके कर्मवाद को प्रथम स्थान प्राप्त हुआ । हा ! ईश्वर कृपा अवश्य मान सकते है, परमात्मा के उपर आदर बहुमान रखना ही ईश्वर कृपा है और वह शुभ भाव रूप होने से उससे पाप का विगम और पुण्य का बंध होता है ।

पाप विच्छेद के हेतु

पंचसूत्र में बताया गया है कि दु:ख रूप संसार का विच्छेद शुद्ध धर्म से होता है, उसकी प्राप्ति पाप कर्म दूर होने से होती है उसके तथा-भव्यतादि कारण है, उसका परिपाक अरिहंत/सिद्ध साधु/जिन प्रवचन का शरण कारण है, दुष्कृत की गर्हा जो कोई भी बूरा कार्य किया हो उसके लिये पश्चाताप करना ।

सुकृत की अनुमोदना- शुभ कार्य किया हो उसकी अनुमोदना करना, वाह ! आज तो मेरे हाथ से प्रतिष्ठा हो गई । में आज धन्य धन्य बन गया इत्यादि ।

॥ चार प्रकार के ध्यान ॥

1. **आर्तध्यान** - अनिष्ट पदार्थ यहां से कब हटे/अच्छा पदार्थ मेरे से दूर न हो, एसे विचार में मग्न होना और अरे ! बापरे ! यह कितना भारी दर्द ! इत्यादि/धार्मिक क्रिया के बदले में भौतिक सुख प्राप्त करने का दावा

करना/इच्छा करना एसे विचारो से जीव पशु पंखी के अवतार में जाता है ।

2. **रौद्रध्यान** - में हिंसा करूं ! में इसका खून करूं ! उसका माल उठालुं ! झूठ बोलकर मैं बच जाऊं ! धन की तिजोरी को विद्युत तार जोड दुं ! सेफ डिपोजीट में सोना जमा करा दुं ! इत्यादि विचार करना रोद्रध्यान है । एसे विचार में सोया हुआ व्यक्ति नरक में शयन पाता है ।

3. **धर्मध्यान** - भगवान की आज्ञा शिरमोर है, अहो ! इस संसार में कैसे कैसे दु:ख का भागी बनना पडता है । मुझे जो दु:ख मिला है वह सब मेरे कर्म का ही विपाक है, भगवान ने कितना स्पष्ट रुप से लोक का स्वरूप बताया एसे लोक के पदार्थो की विचारना करना धर्मध्यान है, जिससे मनुष्य व देव गति प्राप्त होती है ।

4. **शुक्लध्यान** - ग्रंथ में दर्शाई हुई १२ भावना के द्वारा कोई भी एक पदार्थ में लयलीन बन जाना शुक्लध्यान है । इससे सिद्धगति हस्तगत होती है ।

॥ ज्योतिष् चक्र का विशेष विज्ञान ॥

नाम	विस्तार	पृथ्वी से दूराई
चन्द्र	56/61 यो. - 2940 माईल	880 यो. - 29.16.000 माईल
सूर्य	48/61 यो. - 2520 ''	880 यो. - 25.60.000 ''
ग्रह	2 कोश - 1600 ''	884 यो. - 28.28.800 ''
नक्षत्र	1 कोश - 800 ''	900 यो. - 28.80.000 ''
तारा	1/2 कोश - 400 ''	790 यो. - 25.28000 ''

o **चंद्र की कला** - चंद्र से 4 अंगुल नीचे नित्य राहु कृष्ण रत्न का घुमता रहता है, लेकिन शुक्ल पक्ष में थोडा थोडा पीछे खीसकता है अत: चंद्र का भाग प्रगट होता रहता है । और कृष्ण पक्ष में आगे आता है अत: चंद्र का भाग ढकने लगता है । बस इस तरह चंद्र भाग का प्रगट होनाऔर आवृत होना ही चंद्र ही कला है ।

o **देव विमान का विस्तार** - 850, 740 यो. एसा एक कदम देव की

वेगा गति का होता है उस गति से छ महिने चलने पर भी विमान की बाह्य गोलाई/ परिधि का पार नहि कर सकते, इतने बडे बडे असंख्य विमान स्वर्ग लोक में है ।

० देव का आहारादि - दस हजार वर्ष की उम्रवाला देव अेक दिन छोडकर आहार लेता है, 7 स्तोकके बाद अेक श्वास ग्रहण करता है। उससे ज्यादा आयुष्य वाला 2 से 9 दिन बाद आहार, 2 से 9 मुहुर्त बाद श्वास लेता है ।

० सागरोपम आयुष्य वाला - 15 दिन बाद श्वास, 1000 वर्ष बाद आहार /सागरोपम के अनुसार पक्ष व वर्ष में बढोतरी करते रहे, जैसे - 2 सागरोपम वाला दो पक्ष बाद श्वास, 2000 वर्ष बाद आहार ग्रहण करता है । आहार के स्वादिष्ट पुद्गल अपने आप मुंह में आ गिरते है और बडी तृप्ति का अनुभव होता है ।

० सागर का नीर - वारूणीवर समुद्र के पाणी का स्वाद मदिरा जैसा, क्षीर समुद्र का पाणी खीर जैसा, घृतवर समुद्र का पाणी घी जैसा, लवण समुद्र का नमक जैसा, पुष्करोदधि का सामान्य पानी जैसा, स्वयंभूरण समुद्र का सामान्य पानी, शेष असंख्य समुद्र का शेलडी के रस जैसा।

कौन ! कौन सी नरक में जाता है ?

असंज्ञी पञ्चे. पशु पक्षी	- पहली नरक में.
भुजा बल से चलने वाले नवेला नोलीया आदि	- दूसरी नरक में
गर्भज पक्षी-गीध आदि	- तीसरी नरक में.
सिंह आदि हिंसक जानवर	- चोथी नरक में.
पेटसे रेंगने वाले सांप आदि	- पांचवी नरक मे.
स्त्री-चक्री की पट्टराणी आदि	- छठी नरक में.
पुरूष व जलचारी तंदुलीया मत्स्य आदि	- सातवी नरक में.

1000 योजन वाले मत्स्य की आंख के उपर चावल जैसा छोटासा मत्स्य होता है, जो बडे मत्स्य के मुंह में आने वाले सभी मत्स्य को खाने की भावना में मरकर सातवी नरक में जाता है ।

''असंख्य व अनंत की संख्या का अंदाज''

अेक लाख यो. लंबे चौडे व 1000 योजन गहरे 4 प्याले की कल्पना करे, A/ प्याले को सरसव से भरकर एक एक सरसव द्वीप समुद्र में डालते जाय और खाली होने पर वहां के समुद्र प्रमाण का प्याला कल्पे और सरसव भर के डालते डालते आगे चले । खाली होने पर अेक सरसव B/ में डाले पुनः वहां के समुद्र/द्वीप प्रमाण का A प्याला कल्पे और सरसव भरके डालते डालते खाली होने पर दूसरा सरसव B में डाले । इस रीति से B को भरे, फिर B को उठाकर आगे चले, उसमेंसे सरसव डालते डालते खाली होनेपर C में अेक दाणा डाले पुनः वहां के समुद्र प्रणाम का A कल्पे और पूर्व रीत से पुनः B को भरके खाली करने पर दूसरा दाणा C में डाले । इस रीती से C को भरके खाली करने पर एक सरसव डी, में डाले इस रीति से डी, भर जाने पर पूर्व की रीति से C/B और वहां के प्रमाण के समुद्र जितना A की कल्पना करके इसको भरे । अब पूर्व के तीन प्यालो द्वारा जितने सरसव डाले गये वे और इन 4 प्याले के सरसव की जोड करे उसमें से एक कम करने पर उत्कृष्ट संख्याता होता है, एक रूप युक्त करने पर जे अंसख्यात बनता है । उसका राशी अभ्यास करने पर आवलिका के समय की संख्या आती है । राशी का मतलब - 5 x 5 x 5 x 5 x 5 = 3125 इस प्रकार पांच को पांच बार गुनना वो ५ का राशी अभ्यास है ।

उसका 7 बार राशीअभ्यास करने पर जघन्य अनंतानंत की संख्या आती है । आगे आगे का द्वीप/समुद्र दुगुना दुगुना होता है ।

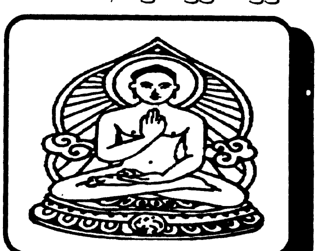

प्रकाशित पुस्तके

- रत्नसंचय (हिन्दी) - एतिहासिक व जैन मौलिक पदार्थो की जानकारी किंमत - २०-००
- मूलशुद्धि भावानुवाद - प्राचीन कथाओ का संग्रह (गुज.) किंमत - ४५-००
- षोडषक प्रकरण - सटीक गुजराती विवरण किंमत - ६५-००
- मुक्तिमार्गोपदेशिका - (हिन्दी) पांचो देववंदन एवं अनेक तप विधिओ का संग्रह - पोस्ट खर्च २-००
- जैनतत्वसार (हिन्दी) - जैन तत्त्वो का सार पोस्ट खर्च २-००
- तर्क भाषा वार्तिक - सानुवाद प्राथमिक न्याय विवरण (गुज.) (प्रेस में)

प्राप्ति स्थान

श्री रंजन विजयजी जैन पुस्तकालय
मु.पो. : मालवाडा, जि. जालोर
(राज.) पि. 343 039